* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

अर्जुन और श्रीकृष्ण

भगवान् सूर्य

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा।
दृष्टान्तदृष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाश्यमाशु भुवनं सितरश्मिनेव॥

वर्ष ९४ | गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, दिसम्बर २०२० ई० | संख्या १२

पूर्ण संख्या ११२९

भगवान् श्रीसूर्यके स्वरूपका ध्यान

भास्वद्रत्नाढ्यमौलिः स्फुरदधररुचा रञ्जितश्चारुकेशो
भास्वान् यो दिव्यतेजाः करकमलयुतः स्वर्णवर्णः प्रभाभिः।
विश्वाकाशावकाशे ग्रहगणसहितो भाति यश्चोदयाद्रौ
सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमितः पातु मां विश्वचक्षुः॥

'उत्तम रत्नोंसे जटित मुकुट जिनके मस्तककी शोभा बढ़ा रहे हैं, जो चमकते हुए अधर-ओष्ठकी कान्तिसे शोभित हैं, जिनके सुन्दर केश हैं, जो भास्वान् अलौकिक तेजसे युक्त हैं, जिनके हाथोंमें कमल हैं, जो प्रभाके द्वारा स्वर्णवर्ण हैं एवं ग्रहवृन्दके सहित आकाशदेशमें उदयगिरि—उदयाचल पर्वतपर शोभा पाते हैं, जिनसे समस्त जीवलोक आनन्द प्राप्त करते हैं, हरि और हरके द्वारा जो नमित हैं, ऐसे विश्वचक्षु भगवान् सूर्यनारायण मेरी रक्षा करें।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, दिसम्बर २०२० ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- 'भगवान् श्रीसूर्यके स्वरूपका ध्यान'	३
२- कल्याण	५
३- गीताज्ञानका पुनर्स्मरण **[आवरणचित्र-परिचय]**	६
४- श्रीगीताजयन्ती और गीताकी महिमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७
५- स्वच्छ वस्त्रोंका आध्यात्मिक प्रभाव (आचार्य डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०, पी०-एच० डी०)	९
६- सबमें भगवान् (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१०
७- धन और भागवत-जीवन (श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी)	११
८- मुक्ति स्वत: हो रही है **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१४
९- भोग और प्रसाद (आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')	१७
१०- 'अवसि चलिअ बन' (श्रीसंजीवकुमारजी भारद्वाज, बी०काम०, एल-एल०बी०)	१८
११- अंग्रेजीके कवियोंपर गीताका प्रभाव (डॉ० श्रीरामशंकरजी द्विवेदी)	२०
१२- प्रलय नहीं, लयके देवता हैं भैरवजी (श्रीसलिलजी पाण्डेय)	२२
१३- सनत्कुमारकथित श्रीकालभैरवाष्टकम्	२३
१४- श्रीमद्भगवद्गीताका कर्मयोग (श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)	२४
१५- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)	२६
१६- जीव क्या है और माया क्या है? (श्रीरणविजयसिंहजी)	२७
१७- विश्वासी भक्त (श्रीयुत पं० श्रीनाथजी दुबे)	२८
१८- महापुरुषोंके प्रति उद्दण्डताका दुष्परिणाम **[बोध-कथा]**	३०
१९- ग्वालियरका शनिधाम—शनिश्चरा **[तीर्थ-दर्शन]**	३१
२०- भक्तकवि श्रीकृष्णदयार्णवजी **[सन्त-चरित]**	३३
२१- विलक्षण क्षमा **[प्रेरक-प्रसंग]**	३४
२२- विवेक, विश्वास और प्रेम (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	३५
२३- 'पांचजन्य लो हाथमें' (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')	३६
२४- गोमाताकी सेवासे पुनरुत्थान **[गो-चिन्तन]**	३७
२५- **साधनोपयोगी पत्र**	
१-भगवान् अकारण करुण हैं	३८
२-विविध प्रश्नोत्तर	३९
२६- व्रतोत्सव-पर्व [माघमासके व्रत-पर्व]	४०
२७- व्रतोत्सव-पर्व [फाल्गुनमासके व्रत-पर्व]	४१
२८- **कृपानुभूति**	
मार्गदर्शक	४२
२९- **पढ़ो, समझो और करो**	
१-कृष्णभक्तोंकी सेवा भी कृष्णभक्ति है	४३
२-हिंसक प्राणीके प्रति भी करुणा रखना ही मनुष्यता है	४५
३०- **मनन करने योग्य**	
जुआ अनर्थकी जड़ है	४६
३१- निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची	४७

चित्र-सूची

१- अर्जुन और श्रीकृष्ण	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- भगवान् सूर्य	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- अर्जुन और श्रीकृष्ण	(इकरंगा)	६
४- गीताका उपदेश	(,,)	७
५- द्यूतक्रीड़ा	(,,)	४६

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — वार्षिक US$ 50 (' 3,000); पंचवर्षीय US$ 250 (' 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org**	e-mail : **kalyan@gitapress.org**	✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

***याद रखो*—**मानव-जीवन बहुत बड़े उच्च कार्यकी सिद्धिके लिये है और वह काम सफल हो भी सकता है केवल मानव-जीवनमें ही। वह कार्य है—मुक्ति या भगवत्प्राप्ति। उसके लिये प्रयत्न न करके दूसरे-दूसरे कार्योंमें लगे रहना ही मानव-जीवनका प्रमाद है। इस प्रमादमें कभी नहीं पड़ना चाहिये।

***याद रखो*—**इसी 'मुक्ति' या भगवत्प्राप्तिके लिये ही यह जीवन मिला है। इसलिये 'बालक-अवस्था' से ही इसे लक्ष्य बनाकर जीवनका निर्माण करना है। यह मानना मूर्खता है कि यह काम 'वृद्धावस्था' का है। कौन जानता है कि वृद्धावस्था आयेगी या नहीं? कौन कह सकता है बालकपनमें ही मृत्यु नहीं आ जायगी? इसलिये घरवालोंको तथा समझदार बालकोंको शुरूसे ही ऐसा वातावरण बनाना तथा आचरण करना चाहिये, जिससे शिशु-अवस्थामें ही इस मार्गके संस्कार बनें और बढ़ें।

***याद रखो*—**मदालसा मैयाने लोरीमें ही अपने बच्चोंको ब्रह्मोपदेश किया था, प्रह्लादकी माता कयाधूदेवीने गर्भावस्थामें ही नारदजीके द्वारा अपने गर्भस्थ शिशु प्रह्लादको भगवद्भक्तिकी शिक्षा सुलभ कर दी थी। घर-घरमें कथा-पुराणके प्रसंग, माता-पिता तथा दादी-नानीके द्वारा रामायण-महाभारतकी कहानियाँ बालकोंको इसीलिये सुनायी जाती थीं। उठते, नहाते, खाते, जम्हाई लेते, छींकते, पढ़ाई आरम्भ करते, यात्रा आरम्भ करते, किसीसे मिलते, किसीको पत्र लिखते, सोते, मृत्युके समय तथा मरनेके बाद शवको श्मशान ले जाते समय विविध रूपोंमें इसीलिये भगवान्का नाम लेने, लिखने, उच्चारण करने आदिकी प्रथा थी, जिससे घरके वातावरणमें भगवान्के साथ सम्पर्क बना रहे और बालकपर उसका प्रभाव पड़े। और इसीलिये संस्कार, तीन काल भगवान्के स्मरण और नित्यकर्म आदिकी व्यवस्था थी।

***याद रखो*—**प्रह्लाद, ध्रुव बालक ही थे, जो बालकपनमें ही भगवान्की कृपाको पाकर धन्य हो गये थे। आज भी उनका नाम लेकर और उनके जीवनकी विश्वासभरी बातोंको पढ़-सुनकर सभी लोग पवित्र होते हैं।

***याद रखो*—**जीवनको भगवान्की ओर लगानेके लिये दुर्गुण, दुराचार, दुर्विचार, दुःसंगका त्याग करके सद्गुण, सदाचार, सद्विचार और सत्संगका सेवन करनेकी नितान्त और अत्यन्त आवश्यकता है। श्रद्धा, विश्वास, आज्ञानुवर्तिता, अनुशासन, नियमित जीवन, संयम, सादगी, इन्द्रियनिग्रह आदि इस मार्गके प्रधान सहायक हैं। इनका सेवन श्रद्धापूर्वक बालक-अवस्थासे ही करना शुरू कर दो।

***याद रखो*—**माता-पिताके चरणोंमें नमस्कार, उनकी सेवा तथा उन्हें सुख पहुँचानेका पूरा प्रयत्न, गुरुका सम्मान तथा उनकी आज्ञाका पालन, प्रतिदिन अपने अधिकारानुसार तथा भावानुसार नियमित भजन, प्रार्थना, संध्या, जप, नियमित स्वाध्याय, सेवा तथा दुःखपीड़ित नर-नारियोंकी सेवासे इस मार्गमें बड़ा लाभ होता है। इतना ही नहीं, इससे इस लोकमें भी सुख, ऐश्वर्य, आरोग्य, विद्या, यश, शक्ति और गौरवकी प्राप्ति होती है।

***याद रखो*—**भगवान्को पानेके लिये विषय-वैराग्य और ईश्वर-भजन अवश्य-अवश्य होना चाहिये। इसके लिये पूर्ण प्रयत्न करो। सदा सावधानीसे सचेष्ट रहो।

***याद रखो*—**धन, विद्या, बल, पौरुष, बुद्धिमत्ता और महत्ताकी सफलता इसीमें है कि इन सबका प्रयोग, उपयोग भगवत्प्राप्तिके लिये हो। नहीं तो, ये सभी व्यर्थ हैं, और हैं नरकाग्निमें ढकेलनेवाले। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

गीताज्ञानका पुनर्स्मरण

महाभारत युद्धके बाद जब पाण्डवोंने अपने राज्यपर पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया, तो वे दिव्य सभा-भवनमें आनन्दके साथ रहने लगे। एक दिन स्वेच्छासे घूमते-घूमते श्रीकृष्णके सहित अर्जुन सभामण्डपके ऐसे भागमें पहुँचे, जो स्वर्गके समान सुन्दर था। पाण्डुनन्दन अर्जुन श्रीकृष्णके साथ रहकर बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने कहा—'देवकीनन्दन! जब युद्धका अवसर उपस्थित था, उस समय मुझे आपके माहात्म्यका ज्ञान और ईश्वरीय स्वरूपका दर्शन हुआ था, किंतु वह सब इस समय बुद्धिके दोषसे भूल गया है। उन विषयोंको सुननेके लिये बारंबार मेरे मनमें उत्कण्ठा होती है। अत: पुन: वह सब विषय मुझे सुना दीजिये।'

श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन! उस समय मैंने तुम्हें अत्यन्त गोपनीय विषयका श्रवण कराया था, अपने स्वरूपभूत धर्म—सनातन पुरुषोत्तमतत्त्व और शुक्ल-कृष्ण गतिका निरूपण करते हुए नित्य लोकोंका भी वर्णन किया था; किंतु तुमने जो अपनी नासमझीके कारण उस उपदेशको याद नहीं रखा, यह जानकर मुझे बड़ा खेद हुआ है। अब मेरे लिये उस उपदेशको ज्यों-का-त्यों दुहरा देना कठिन है; क्योंकि उस समय योगयुक्त होकर मैंने परमात्मतत्त्वका वर्णन किया था। अब उस विषयका ज्ञान करानेके लिये मैं एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ।

एक दिनकी बात है, एक दुर्धर्ष ब्राह्मण ब्रह्मलोकसे उतरकर मेरे यहाँ आये। मैंने उनकी विधिवत् पूजा की और मोक्षधर्मके विषयमें प्रश्न किया। मेरे प्रश्नका उन्होंने जो उत्तर दिया, वही मैं तुम्हें बतला रहा हूँ।

ब्राह्मणने कहा—मधुसूदन! मनुष्य नाना प्रकारके शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करके केवल पुण्यके संयोगसे इस लोकमें उत्तम फल और देवलोकमें स्थान प्राप्त करते हैं। जीवको कहीं भी अत्यन्त सुख नहीं मिलता। तपस्या आदिके द्वारा कितने ही कष्ट सहकर बड़े-से-बड़े स्थानको क्यों न प्राप्त किया जाय, वहाँसे भी बार-बार नीचे आना ही पड़ता है। मैंने काम-क्रोधसे युक्त और तृष्णासे मोहित होकर अनेकों बार पाप किये हैं और उनके फलस्वरूप घोर कष्ट देनेवाली अशुभ गतियोंको भोगा है। कितनी ही बार मुझसे प्रियजनोंका वियोग और अप्रिय मनुष्योंका संयोग हुआ है। जिस धनको मैंने बहुत कष्ट सहकर कमाया था, वह मेरे देखते-देखते नष्ट हो गया है। मैंने अनेकों बार घोर नरकमें पड़कर यमलोककी यातनाएँ सही हैं और इस लोकमें जन्म लेकर बारंबार बुढ़ापा, रोग और राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंके दु:खोंका अनुभव किया है। इस प्रकार बारंबार क्लेश उठानेसे एक दिन मेरे मनमें बड़ा संताप हुआ और मैंने दु:खोंसे घबराकर परमात्माकी शरण ली तथा समस्त लोक-व्यवहारका परित्याग कर दिया। अब परमात्माकी कृपासे मुझे यह उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई है। अब मैं पुन: इस संसारमें नहीं आऊँगा।

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे अर्जुन! इसके बाद उन ब्राह्मणश्रेष्ठने मुझसे जीवकी मृत्यु और उसकी त्रिविध गति, जीवके गर्भ-प्रवेश, आचार-धर्म, कर्मफलकी अनिवार्यता, संसारसे तरने तथा मोक्षप्राप्तिके उपायका वर्णन किया। मोक्ष-धर्मका आश्रय लेनेवाले वे ब्राह्मणश्रेष्ठ सिद्ध मुनि मुझसे यह प्रसंग सुनाकर वहीं अन्तर्धान हो गये। पार्थ! यह मैंने देवताओंके लिये भी परम गोपनीय रहस्य बतलाया है। इस जगत्‌में कभी किसी भी मनुष्यने इस रहस्यका श्रवण नहीं किया है। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई मनुष्य इसको सुननेका अधिकारी भी नहीं है। **[महाभारत]**

श्रीगीताजयन्ती और गीताकी महिमा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

यह प्रश्न होता है कि श्रीगीताजयन्ती मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को ही क्यों मनायी जाती है? इसी दिन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके प्रति गीताका उपदेश दिया था, इसका क्या प्रमाण है? इसके लिये हमें महाभारतके युद्धारम्भ एवं पितामह भीष्मके परलोकगमनके कालपर दृष्टिपात करना आवश्यक है—महाभारत, भीष्मपर्वके अध्याय २, श्लोक २३-२४ में लिखा है कि कार्तिककी पूर्णिमाके चन्द्रमाको देखकर श्रीवेदव्यासजीने धृतराष्ट्रसे कहा कि निकट भविष्यमें बड़ा भयंकर युद्ध होनेवाला है; क्योंकि चन्द्रमाका रूप अग्निके समान लाल, कान्तिहीन और अलक्ष्य दिखायी पड़ता है।*

महाभारत, अनुशासनपर्वके १६७वें अध्यायके २७वें-२८वें श्लोकोंमें वर्णन आता है कि भीष्मजीने माघ शुक्ला अष्टमीके दिन अपने शरीरका परित्याग किया था। श्रीभीष्मजी बहुत दिनोंतक शरशय्यापर पड़े रहे। इस हिसाबसे माघ शुक्लपक्ष या पौष शुक्लपक्षमें तो गीताजयन्ती हो नहीं सकती, प्रत्युत मार्गशीर्षमें ही हो सकती है।

यदि शुक्लपक्ष न मानकर कृष्णपक्ष ही गीता-जयन्तीका काल मान लिया जाय, तो वह भी ठीक नहीं; क्योंकि महाभारत, द्रोणपर्वमें वर्णन है कि चौदहवें दिनकी रात्रिमें जो संग्राम हुआ था, उस समय घोर अन्धकार था, प्रज्वलित दीपकों (मशालों)-के प्रकाशमें ही वह युद्ध हुआ था (देखिये अ० १६३); वहाँ अँधेरेमें अपने-परायेका ज्ञान न रहनेसे लोग अपने पक्षके वीरोंका भी संहार करने लगे। तब अर्जुनने युद्ध बन्द करके विश्राम करनेकी आज्ञा दे दी (देखिये अ० १८४)। इस प्रकारकी अन्धकारमयी रात्रि कृष्णपक्षमें ही रहती है। इस हिसाबसे गीताके प्राकट्यका समय कृष्णपक्ष नहीं हो सकता; क्योंकि गीता युद्धारम्भके पहले ही कही गयी थी और उक्त चौदहवें दिनकी रात्रिके युद्धके समयमेंसे तेरह दिन घटानेपर शुक्लपक्ष ही सिद्ध होता है।

यदि कहें 'कि एकादशीके दिन ही गीता कही गयी, इसका क्या प्रमाण है?' तो इसका उत्तर यह है कि उक्त चौदहवें दिनकी रात्रिमें आधी रातके पश्चात् चन्द्रमाके उदय होनेपर पुनः युद्ध आरम्भ हुआ था। वहाँका चन्द्रमाका वर्णन कृष्णपक्षकी नवमीके जैसा है; क्योंकि अर्धरात्रिके बाद चन्द्रोदय अष्टमीके पूर्व हो नहीं सकता। अतः उस युद्धकी रात्रिको पौष कृष्णपक्षकी नवमी मानें तो उससे तेरह दिन घटानेपर मार्गशीर्ष शुक्ल ११ ही ठहरती है।

यदि यह मानें कि प्राचीनकालकी गणनामें शुक्लपक्ष पहले गिना जाता था, कृष्णपक्ष बादमें—इस न्यायसे मार्गशीर्ष कृष्ण नवमीकी रात्रिमें युद्ध हुआ तो इसमें कोई विरोध नहीं है। उस कालसे भी १३ दिन घटानेपर तिथि मार्गशीर्ष शुक्ल ११ ही ठहरती है।

इसके सिवा एकादशीका दिन पर्वकाल है और मार्गशीर्षका महीना सबसे उत्तम माना गया है, जिसके लिये स्वयं भगवान्ने गीतामें कहा है—'**मासानां मार्गशीर्षोऽहम्**—(१०। ३५)।' इन सब प्रमाणोंके

* अलक्ष्यः प्रभया हीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीम्। चन्द्रोऽभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णनभस्तले॥
स्वप्स्यन्ति निहता वीरा भूमिमावृत्य पार्थिवाः। राजानो राजपुत्राश्च शूराः परिघबाहवः॥

आधारपर ही अनेक पण्डितोंने यह निर्णय किया है कि मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को ही युद्ध आरम्भ हुआ था और उसी दिन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके प्रति गीतोपदेश दिया था।*

संसारमें अध्यात्मविषयक ग्रन्थ गीताके समान और कोई नहीं है। गीतापर जितनी टीकाएँ, भाष्य और अनुवाद नाना प्रकारकी भाषाओं और लिपियोंमें मिलते हैं, उतने दूसरे किसी धार्मिक ग्रन्थपर नहीं मिलते। गीताप्रेस, गोरखपुरमें ही संस्कृत, हिंदी, गुजराती, बँगला, मराठी, उर्दू, अरबी, फारसी, गुरुमुखी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि अनेक भाषाओं और लिपियोंमें मूल तथा भाषाटीका मिलाकर १३००से अधिक गीताओंका संग्रह है।

गीताकी महिमा जो पद्मपुराणमें मिलती है, उसे देखनेपर मालूम होता है कि गीताके सदृश महिमा दूसरे किसी ग्रन्थकी नहीं। गीताकी महिमा महाभारतमें स्वयं वेदव्यासजीने भी कही है—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिःसृता॥

(भीष्मपर्व ४३।१)

'गीताका ही अच्छी प्रकारसे श्रवण, कीर्तन, पठन-पाठन-मनन और धारण करना चाहिये; अन्य शास्त्रोंके संग्रहकी क्या आवश्यकता है? क्योंकि वह स्वयं पद्मनाभ भगवान्के साक्षात् मुखकमलसे निकली हुई है।'

सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयो हरिः।
सर्वतीर्थमयी गंगा सर्वदेवमयो मनुः॥

(भीष्मपर्व ४३।२)

'जैसे मनुजी सर्वदेवमय हैं, गंगा सकलतीर्थमयी है और श्रीहरि सर्वदेवमय हैं, इसी प्रकार गीता सर्वशास्त्रमयी है।'

भारतामृतसर्वस्वगीताया मथितस्य च।
सारमुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे हुतम्॥

(भीष्मपर्व ४३।५)

'महाभारतरूपी अमृतके सर्वस्व गीताको मथकर और उसमेंसे सार निकालकर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके मुखमें उसका हवन किया है।'

गीता सारे उपनिषदोंका सार है। शास्त्रमें बतलाया है—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

'सम्पूर्ण उपनिषद् गायें हैं, गोपालनन्दन श्रीकृष्ण उनको दुहनेवाले (ग्वाला) हैं, अर्जुन बछड़ा हैं और गीताप्रेमी भगवत्-जन उनसे निकले हुए महान् गीतामृतरूपी दूधका पान करनेवाले हैं।'

सम्पूर्ण शास्त्रमें गीताको सर्वोपरि माना गया है। कहा है—

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीत-
मेको देवो देवकीपुत्र एव।
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि
कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा॥

'श्रीदेवकीनन्दन श्रीकृष्णका कहा हुआ गीताग्रन्थ ही एक सर्वोपरि शास्त्र है, श्रीकृष्ण ही एकमात्र सर्वोपरि देव हैं, उनके जो नाम हैं, वे ही सर्वोपरि मन्त्र हैं और उन परमदेवकी सेवा ही एकमात्र सर्वोपरि कर्म है।'

गीता गंगासे भी बढ़कर है। गंगामें स्नान करनेका फल तो अधिक-से-अधिक स्नान करनेवालेकी मुक्ति बताया गया है। यों गंगामें स्नान करनेवाला तो स्वयं ही मुक्त हो सकता है, वह दूसरोंको मुक्त नहीं कर सकता। किंतु गीतारूपी गंगामें स्नान करनेवाला तो स्वयं मुक्त होता है और दूसरोंको भी मुक्त कर सकता है।

गीताकी भाषा भी मधुर, सरल, अर्थ और भावयुक्त है। अतएव सभी माता-बहिनों और भाइयोंको प्रतिदिन कम-से-कम एक अध्यायका पाठ तो अर्थ और भाव समझते हुए अवश्य करना ही चाहिये।

---

* 'गीता-धर्म-मण्डल' पूनाने तथा प्रसिद्ध विद्वान् श्रीकरंदीकर महोदयने बहुत-से प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया है कि गीताका उपदेश मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को ही हुआ था। प्रसिद्ध ज्योतिषी पं० श्रीइन्द्रनारायणजी द्विवेदीका भी यही मत है। प्रख्यात ऐतिहासिक स्व० श्रीचिन्तामणिराव वैद्यने मार्गशीर्ष शु० १३को गीताकी जन्मतिथि बतलाया है—'सम्पादक'

स्वच्छ वस्त्रोंका आध्यात्मिक प्रभाव

(आचार्य डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०, पी०-एच० डी०)

जिस प्रकार स्नान करनेके उपरान्त सम्पूर्ण शरीरके त्वचा-रन्ध्र खुल जानेसे और घर्षणसे एक प्रकारकी स्फूर्ति प्राप्त होती है, उसी प्रकार स्वच्छ और नवीन वस्त्रोंको धारण करनेसे मनुष्यकी आत्माको प्रसन्नता प्राप्त होती है।

आत्माका गुण स्वच्छता है। वह विकार, दुर्गुण, सब प्रकारके मल पदार्थोंसे मुक्त है। उसमें गन्दगी टिक नहीं सकती। पाप-पंकका उसपर छींटा नहीं पड़ सकता। यदि कोई वस्तु उसे पंकिल करनेका उद्योग करती है, तो हमारी अन्तरात्मामें पश्चात्ताप और आत्मग्लानिकी चीत्कार उठती है। कोई भी दुर्विचार, पापमय कल्पना, कुत्सित वासना, हमारी नैतिकतासे हेय निकृष्ट भावना जब मन:क्षेत्रमें प्रविष्ट होकर हमारे सत्य, प्रेम, कर्तव्यनिष्ठाको विशृंखलित कर देती है, तब आत्मामें एक आन्तरिक आघातका हम सब अनुभव करते हैं। इसका कारण क्या है?

आत्माद्वारा हमें किसी भी ऐसे अनैतिक कार्यके लिये सहयोग प्राप्त नहीं हो सकता, जो किसी भी प्रकारकी कायिक, वाचिक, मानसिक गन्दगीसे युक्त हो। गन्दी धारणाएँ या अश्लील कृत्य करनेवाले आत्माकी ध्वनिकी अवहेलनाकर गन्दे कार्योंमें प्रविष्ट होते हैं; किंतु अन्दर-ही-अन्दर उन्हें एक मनोव्यथा दुखी करती रहती है। कुछ कालके लिये आप इस आन्तरिक ध्वनिका दमन भले ही कर दें, इसका पवित्र कार्य निरन्तर चलता रहता है।

आत्मध्वनिका कार्य है अन्तर्मनमें सफाईका कार्य करना; जो गन्दे विचार, मन्त्रणाएँ या कल्पनाएँ आयें, उन्हें गन्दगीसे हटाकर नीरक्षीर-विवेकद्वारा मनुष्यको सत्पथकी ओर अग्रसर रखना। जो व्यक्ति आत्मध्वनि सुनता है, उसे आत्मध्वनि सीधा मार्ग दिखाती चलती है। उसके मन:क्षेत्रमें सर्वत्र स्वच्छता होती है। जहाँ कोई गन्दा विचार विद्रोहीकी भाँति उदित होता है, वहीं मनकी शुभ वृत्तियाँ उससे संघर्षकर उसे निकाल बाहर करती हैं।

चूँकि स्वच्छता हमारी आत्माका नैसर्गिक गुण है। अत: बाह्य स्वच्छतासे भी परितुष्टि एवं प्रसन्नता प्राप्त होती है। स्वच्छ वातावरणका प्रभाव स्वास्थ्य, प्रसन्नता, आन्तरिक आह्लादका देनेवाला है।

स्वच्छ वातावरणकी सृष्टि करनेमें मनुष्योंके वस्त्रोंका बड़ा सम्बन्ध है। वस्त्र उसके शरीरसे निकटतम सम्पर्क रखते हैं। उनके अनुसार उसकी अन्तर्वृत्तिका निर्माण होता चलता है। यदि उनमें स्वच्छता है, तो स्वभावत: मनमें पवित्र विचारोंका क्रम चलने लगता है। विचार-प्रवाह स्वयं पवित्रता और सात्त्विकताकी ओर रहता है। गन्दगीसे विचार उतने ऊँचे नहीं उठ पाते। उनकी नैतिकताको अप्रत्याशित चोट लगती है। गन्दे वस्त्रोंके सम्पर्कमें रहते-रहते उसकी उच्च शक्तियाँ धीरे-धीरे पंगु हो जाती हैं।

महात्मा गाँधीजीका विश्वास था कि खद्दरके स्वच्छ वस्त्र पहनकर ही वे सत्य, न्याय, अहिंसा, विश्व-बन्धुत्वके पवित्र विचारोंसे प्रेरित हो जाते थे। प्रत्येक सत्याग्रहीको खद्दर पहनना चाहिये। खद्दर और विचारोंकी पवित्रताका निकट सम्बन्ध है।

वातावरणकी स्वच्छता और वस्त्रकी स्वच्छता मनकी स्वच्छता उत्पन्न करनेवाली है। जो व्यक्ति स्वच्छ रहनेका अभ्यस्त है, उसके विचारोंका स्तर गन्दे वस्त्रोंवालेसे ऊँचा रहता है।

स्वच्छता दैवत्वका सामीप्य है (Cleanliness is next to Godliness)—इस उक्तिमें महान् संदेश भरा है। स्वच्छता क्रमश: देवत्वके समीप हमें ले जाती है। देवताओंका एक विशिष्ट गुण स्वच्छता है। स्वच्छ रहकर आप वातावरणकी दृष्टिसे देवत्वके समीप पहुँच जाते हैं।

कैसे परितापका विषय है कि जहाँ अन्य जातियाँ स्वच्छताके लिये सतत उद्योगशील हैं, बच्चोंमें स्वच्छताके बीज बोती हैं, वहीं हमारे यहाँ कतिपय लोगोंद्वारा इस ओर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। स्वच्छता एक आदत है। यदि एक बार आदत डाल दी जाय तो जीवनभर मनुष्य उसे नहीं भूलता। याद रखना चाहिये कि स्वच्छता और शौकीनीमें बड़ा अन्तर है। शौकीनी दूसरोंको दिखानेके लिये होती है और स्वच्छता गन्दगीका नाश करनेके लिये। शौकीनी तो स्वयं एक मनकी गन्दगीमात्र है।

सबमें भगवान्

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

हमलोगोंका जन्म भारतवर्षमें हुआ है, भारतवर्ष अत्यन्त पवित्र भूमि है, इसलिये हमारा सौभाग्य है। भगवान्‌की यह हमपर बड़ी कृपा है, इसमें कोई संदेह नहीं। परंतु भगवान्‌के लिये तो भारत और भारतेतर सभी देश—अनन्त ब्रह्माण्डका प्रत्येक स्थान समान है तथा सब स्थानोंके निवासी चराचर सभी जीव उनके अपने हैं। सच्ची बात तो यह है कि भगवान्‌की दृष्टिसे उनके अपने सिवा और कुछ है ही नहीं—'**मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति**'।

हम यदि अपनेको भगवान्‌की संतान मानें तो जीवमात्र सभी उनकी प्रिय संतान हैं। वे ही सबके एकमात्र परम पिता या वात्सल्यमयी माता हैं। माता-पिताको अपने सभी बालक प्रिय होते हैं। उनका सभीपर स्नेह और वात्सल्य है। वे सभीका हित चाहते हैं और सभीको सुखी बनाना चाहते हैं। इस दृष्टिसे जगत्‌के हम सभी जीव परस्पर भाई-बहिन हैं, फिर चाहे हम भारतमें जन्मे हों या यूरोपमें, अमेरिकामें अथवा ईरान-अफगानिस्तानमें; हम सभीको परस्पर एक-दूसरेके हितकी इच्छा करनी चाहिये और एक-दूसरेको सदा सुख पहुँचानेका प्रयत्न करना चाहिये। जिनका हृदय वात्सल्यसे भरा है, वे माता-पिता उस पुत्रपर कैसे प्रसन्न हो सकते हैं, जो अपने दूसरे भाई या भाई-बहिनोंको दुखी देखकर, उन्हें दुखी बनाकर सुखी होना चाहता है। 'हिंदू सुखी रहे और सब सुखसे वंचित हों; भारतवासी सुख-सम्पन्न रहें, अन्य देशवासी दु:ख भोगें; मनुष्य सुखी हों, इतर प्राणी सुख प्राप्त न करें, बल्कि सभीका सुख उनसे निकलकर हमारे पास आ जाय, उनका दु:ख ही हमारा परम सुख बन जाय'—ऐसी भावना कितनी पापमयी है और परम पिता भगवान्‌को कितना अप्रसन्न करनेवाली है, इसपर जरा गहराईसे विचार करें।

हमारे यहाँ तो यह सिद्धान्त माना गया है और यह सत्य है कि चराचर सभी रूपोंमें—अखिल जगत्‌के रूपमें हमारे भगवान् ही अभिव्यक्त हो रहे हैं। सब वही हैं या सब उन्हींके शरीर हैं—वे सबमें सदा समानभावसे विराजमान हैं। अतएव किसी भी जीवको सुख पहुँचाना उनको सुख पहुँचाना है, किसीकी सेवा करना उन्हींकी सेवा करना है। किसीको प्रणाम करना उन्हींको प्रणाम करना है और इसी प्रकार किसीको दु:ख पहुँचाना, किसीकी हानि करना और किसीका तिरस्कार करना उन्हींको दु:ख पहुँचाना, नुकसान पहुँचाना और तिरस्कृत करना है। शुक्लयजुर्वेद (४०। १)-का पवित्र आदेश है—

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

इस अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड़-चेतनरूप जगत् है, यह सब ईश्वरसे व्याप्त है, उस ईश्वरको साथ रखते हुए त्यागपूर्वक भोगते रहो। आसक्त मत होओ। धन किसका है?

श्रीमद्भागवत (११। २। ४१)-में कहा है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

यह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-वनस्पति, नदी, समुद्र—सभी भगवान्‌के शरीर हैं। ऐसा समझकर जो कोई भी मिले, उसे अनन्यभावसे—भगवद्भावसे प्रणाम करे।

स्वयं भगवान् गीता (६। ३०)-में कहते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

जो सर्वत्र (सम्पूर्ण प्राणियोंमें) मुझको देखता है और सब (प्राणियों)-को मुझमें देखता है, उससे मैं कभी अदृश्य नहीं होता और वह मुझसे कभी अदृश्य नहीं होता।

इन सब शास्त्रवाक्योंपर ध्यान देकर हमें ऐसा बनना चाहिये कि जिससे हमारी क्रियामें, हमारे वचनमें और हमारे मनमें भी कभी किसीके अहितकी कल्पना भी न आये; किसीको दुखी देखकर सुखी होनेका असत् तथा पापमय संकल्प कभी न उठे। यह निश्चय मान लेना चाहिये कि जिससे दूसरेका अहित या उनको दु:ख होगा, उससे हमारा हित या हमको सुख कभी हो ही नहीं सकता। उचित तो यह है कि अपने पास जो कुछ सुख-सामग्री हो, उसे, जहाँ उस सुख-सामग्रीके अभावसे दु:ख फैला है, वहाँ बाँटते रहें। उनकी अपनी वस्तु समझकर आदरपूर्वक उनको देते रहें और इसीमें अपनेको तथा उस सुख-सामग्रीको धन्य समझें। **'त्वदीयं वस्तु गोविन्द मया तुभ्यं समर्पयेत्।'**

धन और भागवत-जीवन

[श्रीअरविन्दके वचनोंकी व्याख्या]

(श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी)

धनकी आवश्यकता

धन ही हमारा एकमात्र लक्ष्य नहीं है, परंतु धनको अलग रखकर भी सर्वांगपूर्ण जीवनकी हमारी कल्पना पूरी नहीं होती। धन भी हमारे लक्ष्य अथवा उपलक्ष्यका एक अंग है और महत्त्वपूर्ण अंग है। श्रीअरविन्दके शब्दोंमें—धन एक विश्वजनीन शक्तिका स्थूल चिह्न है। यह शक्ति भूलोकमें प्रकट होकर प्राणवान् और जड़ दोनों क्षेत्रोंमें कार्य करती है। बाह्य जीवनकी पूर्णताके लिये इसका होना अनिवार्य है।

श्रीअरविन्द आगे लिखते हैं—'अपने मूल और वास्तविक कर्मकी दृष्टिसे यह शक्ति भगवान्की है। परंतु भगवान्की अन्यान्य शक्तियोंके समान यह शक्ति भी यहाँ दूसरोंको सौंप दी गयी है और इस कारण अध:प्रकृतिके अज्ञानान्धकारमें इसका अहंकारके काममें अपहरण हो सकता है अथवा असुरोंके प्रभावमें आकर विकृत होकर यह उनके काम आ सकती है। मानव-अहंकार और असुर जिन तीन शक्तियोंसे सबसे अधिक आकर्षित होते हैं और जो प्राय: अनधिकारियोंके हाथोंमें पड़ जाती हैं तथा ये अनधिकारी जिनका दुरुपयोग ही करते हैं, उन्हीं आधिपत्य, धन और काम—इन तीन शक्तियोंमेंसे एक शक्ति है धन। धनके चाहनेवाले या रखनेवाले धनके स्वामी तो क्या होते हैं, अधिकतर धनके दास ही होते हैं। धन जो बहुत कालसे असुरोंके हाथोंमें रहा और इसका जो बराबर दुरुपयोग हुआ, इससे इसपर दोषकी एक ऐसी गहरी छाप लगी हुई है कि उससे कोई कठिनाईसे ही बचता हो। इसीलिये प्राय: सभी आध्यात्मिक साधन-मार्गोंमें पूर्ण संयम, अनासक्ति और धनके सब बन्धनों तथा प्रत्येक प्रकारकी वैयक्तिक और अहंकारयुक्त वित्तैषणाके त्यागपर इतना जोर दिया जाता है। कुछ साधन-मार्ग तो धन-वैभवको पाप ही समझते हैं और यह बतलाते हैं कि दरिद्रता और अपरिग्रहका होना ही आध्यात्मिक स्थिति है। पर यह ठीक नहीं है। इससे यह शक्ति दानवी शक्तियोंके हाथोंमें ही रह जाती है। इसका भगवान्के लिये पुनरुद्धार करना—क्योंकि यह भगवान्की है और भागवत जीवनके लिये भागवतभावसे इसका उपयोग करना साधकका विज्ञानमूलक मार्ग है।

धन अपने आपमें न अच्छा है न बुरा। वह केवल एक शक्तिका स्थूल चिह्न है। यह शक्ति अच्छे हाथोंमें पहुँचकर अच्छे उपयोगसे अच्छी बन जाती है और बुरे हाथोंमें जाकर बुरे उपयोगसे यही बुरी बन जाती है। बुराईकी तरह अच्छाईको भी अपने कार्यके लिये शक्ति चाहिये। यदि हम अच्छे कार्य करना चाहते हैं तो हमें वह शक्ति प्राप्त करनी चाहिये, जिसका स्थूल चिह्न धन है। भगवान्के कार्यके लिये हमें धनी और शक्तिशाली बनकर अपने धन और शक्तिका—जो वास्तवमें भगवान्के हैं—सदुपयोग करना चाहिये।

आधिपत्य, धन और काम—ये तीन शक्तियाँ बुराईको अपनाये बिना प्राप्त नहीं होतीं—यों समझना भूल है। और यह समझना भी भूल है कि इन तीन शक्तियोंसे सम्पन्न होनेके कारण ही कोई व्यक्ति वन्दनीय हो जाता है। उसने ये शक्तियाँ कैसे प्राप्त कीं और वह इनका कैसा उपयोग करता है, इसीसे उसकी श्रेष्ठता या नीचता सिद्ध होती है।

पवित्र उपायोंसे प्राप्त किया गया धन पवित्र होता है। ऐसे पवित्र धनवानों (शुचि श्रीमानों)-के घरोंमें महान् पुरुष (योगभ्रष्ट साधक) जन्म लेते हैं। या फिर उनका जन्म बुद्धिके धनी योगियोंके ही कुलमें होता है। ऐसे जन्मको और भी दुर्लभ बताकर गीतामें धनसे ज्ञानकी श्रेष्ठता बतायी गयी है। ज्ञानके साथ ही हमें धन आदि बाह्य शक्तिकी भी आवश्यकता है।

धन-विजयका उद्देश्य

बिलकुल प्रारम्भसे ही हमारे मनमें धन-विजयका

उद्देश्य स्पष्ट रहना चाहिये। इस बातकी ओर हमें निरन्तर जागरूक रहना चाहिये कि धन हमें स्वयं अपने लिये नहीं, बल्कि भगवान्‌के कार्यके लिये प्राप्त करना है। इस प्रकार यह योगका और योगके अन्तर्गत भक्तिका मार्ग है, जिसका पथप्रदर्शन स्वयं भगवान्‌ने किया है। गीताके नौवें अध्यायमें इस राजमार्गको 'सुखमय साधना' (सुसुखं कर्तुम्) कहा है। यह साधना सुखमय तो है, परंतु इसके साधकको निरन्तर जागरूक रहना होता है; जब सारी दुनिया सोती है, तब भी इस पथका पथिक जागता रहता है। परंतु इस मार्गके साधकका जागना औरोंकी तरह नहीं होता। और लोग अपने लिये जागते हैं और यह भगवान्‌के लिये जागता है।

धन-विजयका उद्देश्य यदि हमारे मनमें पहलेसे ही स्पष्ट न रहेगा तो होगा यह कि धन प्राप्त होते ही हम उसे अपने ही विषय-भोगोंमें लगा देंगे और इससे भी बुरा यह होगा कि हम धनके स्वामी न रहकर उसके दास बन जायँगे। अर्थात् धन हमारे लिये न होगा बल्कि हम धनके लिये होंगे, जब कि ये दोनों ही बातें नासमझीकी हैं; क्योंकि सारा धन वास्तवमें भगवान्‌का है और उन्हींके काममें उसका उपयोग करना हमारा धर्म है।

इसका यह अर्थ नहीं कि भगवान्‌के कार्यक्षेत्रसे हमारा जीवन बाहर है। बल्कि यदि हमने अपने आपको भगवान्‌के कार्यका निमित्त बन जाने दिया है तो हम उनके और भी निकट हैं। जो सारे संसारको सुख-समृद्धि प्रदान करते हैं, उनके वरदान प्राप्त करनेके हम और भी अधिक अधिकारी हैं। वे वरदान हमें अवश्य प्राप्त होंगे। हाँ, जब वे वरदान हमें प्राप्त हों, तब उनसे हमें वैरागियोंकी तरह भागना नहीं चाहिये। इस प्रकार उनके वरदानोंसे भागना तो उनका अपमान करना है। भगवान्‌के द्वारा जो पुरस्कार हमारे पास भेजे जायँ, उनको हमें सादर स्वीकार करना चाहिये। वह सब तो उनका प्रसाद है। श्रीअरविन्दके शब्दोंमें—'धनशक्ति और उससे प्राप्त होनेवाले साधनों और पदार्थोंसे तुम्हें वैरागियोंकी तरह भागना न चाहिये और न इनकी कोई राजसी आसक्ति या इनके भोगमें पड़े रहनेकी दासत्व-वृत्ति ही पोसनी चाहिये। धनको केवल यह समझो कि यह एक शक्ति है, जिसे माताकी सेवाके लिये जीतकर लौटा लाना और उन्हींकी सेवामें अर्पण करना है।

धन-विजयका यह उद्देश्य हमें निरन्तर अपने सामने रखना चाहिये कि जो (धन) अपने मूल और वास्तविक कर्मकी दृष्टिसे भगवान्‌का है, वह जहाँ-कहीं अनुपयुक्त हाथोंमें है, उनसे जीतकर लौटा लाना है उसे पुनः भगवान्‌की सेवामें अर्पण करना है।

धनका स्वामित्व

हमें धनका दास नहीं बनना चाहिये। परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि हम स्वयं धनके स्वामी बन जायँ। सारा धन भगवान्‌का है और हमें धन उन्हींकी सेवामें लगाना है। हमें केवल पात्र बनना चाहिये; जिसे भगवान् भरते रहें और खाली करते रहें। बहते रहनेमें ही धनकी भी और पात्रकी भी पवित्रता सुरक्षित है।

जो (धन) भगवान्‌के पाससे आया है और जो उन्हींके पास चला जायगा, वह जबतक हमारे पास है, तबतक उसका अच्छे-से-अच्छा उपयोग करना हमारा धर्म है। श्रीअरविन्दके शब्दोंमें—'सारा धन भगवान्‌का है; और यह जिन लोगोंके हाथमें है, वे उसके ट्रस्टी (रक्षक) हैं, मालिक नहीं। आज यह इनके पास है, कल कहीं और चला जा सकता है। जबतक यह इनके पास है, तबतक ये इस ट्रस्टका पालन कैसे करते हैं, किस भावसे करते हैं, किस बुद्धिसे उसका उपयोग करते हैं और किस काममें करते हैं—इसीपर सब कुछ निर्भर करता है।'

धनका सदुपयोग

पवित्र साधनोंसे धन प्राप्त करना इस साधनाका पूर्वार्ध है तो पवित्र कार्योंमें इसका उपयोग करना इस साधनाका उत्तरार्ध है। जितनी सावधानी हमें धन प्राप्त करनेमें रखनी है, उतनी ही सावधानी इसके व्ययमें भी रखनी है। धनविजयका जो उद्देश्य हमने अपने सामने रखा था, उसे हमें धन प्राप्त होनेके बाद भी निरन्तर अपने सामने रखना चाहिये। और जिस कार्यके लिये हमने धन प्राप्त किया है, उसी कार्यमें उसका उपयोग करना चाहिये।

भगवान्‌के सेवकके रूपमें ही हमें अपने लिये भी

प्राप्त धनके उचित अंशका उपयोग करना चाहिये और सदैव याद रखना चाहिये कि हमारा सम्पूर्ण जीवन और हमारा प्रत्येक कर्म भगवान्‌के लिये है। श्रीअरविन्दके शब्दोंमें—'अपने लिये जब तुम धनका उपयोग करो, तब जो कुछ तुम्हारे पास है, जो कुछ तुम्हें मिलता है या जो कुछ तुम ले आते हो, उसे माताका समझो। स्वयं कुछ भी मत चाहो; पर वे जो कुछ दें, उसे स्वीकार करो और उसी काममें उसे लगाओ, जिसके लिये वह तुम्हें दिया गया हो। नितान्त नि:स्वार्थ, सर्वथा न्यायनिष्ठ, ठीक-ठीक हिसाब रखनेवाले, तफसीलकी एक-एक बातका ध्यान रखनेवाले उत्तम ट्रस्टी बनो; सदा यह ध्यान रखो कि तुम जिस धनका उपयोग कर रहे हो, वह उनका है, तुम्हारा नहीं। फिर उनके लिये जो कुछ तुम्हें मिले, उसे श्रद्धाके साथ उनके सामने रखो, अपने या और किसीके काममें उसे मत लगाओ।'

धन-विजयकी क्षमता

आध्यात्मिक साधकके लिये धन-विजयके मार्गमें दो बड़ी बाधाएँ आती हैं। एक बाधा तो भगवान्‌की ही ओरसे होती है। भगवान् नहीं चाहते कि उनके भक्तका पतन धनके कारण हो। अत: जबतक साधकमें धनकी इच्छा या आसक्ति शेष रहती है, तबतक उसे धन मिलनेमें बाधाएँ उपस्थित होती रहती हैं। जब वह धनके दोषसे मुक्त हो जाता है और धनके कारण उसके पतनका खतरा तनिक भी नहीं रहता, तब उसके मार्गसे दैवी बाधाएँ हटा दी जाती हैं।

धनकी प्राप्तिमें दूसरी बाधा स्वयं साधककी ओरसे रहती है। वह यह कि बहुत-से साधक दरिद्रताको ही जीवनका आदर्श मानते हैं। यदि वे ऐसा मानते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं यदि उन्हें धन नहीं प्राप्त होता। धनकी हमें अपने लिये इच्छा नहीं करनी चाहिये, परंतु इच्छाका ही दूसरा रूप धनसे भागना है। श्रीअरविन्दके शब्दोंमें—'यदि धनके दोषसे तुम मुक्त हो, पर साथ ही संन्यासीकी तरह तुम उससे भागते नहीं हो तो भागवत-कर्मके लिये धन-जय करनेकी बड़ी क्षमता तुम्हें प्राप्त होगी। मनका समत्व, किसी स्पृहाका न होना और जो कुछ तुम्हारे पास है और जो कुछ तुम्हें मिलता है और तुम्हारी जितनी भी उपार्जनशक्ति है, उसका भागवती शक्तिके चरणोंमें तथा उन्हींके कार्यमें सर्वथा समर्पण—ये ही लक्षण हैं धनदोषसे मुक्त होनेके। धनके सम्बन्धमें या उसके व्यवहारमें किसी प्रकारकी मनकी चंचलता, कोई स्पृहा, कोई कुण्ठा किसी-न-किसी दोष या बन्धनका ही निश्चित लक्षण है।'

भगवान्‌के लिये ही यदि हम कोई व्यापार या व्यवसाय करेंगे तो उसमें अपने महान् उद्देश्यके अनुरूप अवश्य ही महती सफलता प्राप्त करेंगे, जो भगवान्‌के कार्यकी ही सफलता होगी।

धनके भागवत विजेता

धन केवल सज्जनोंको ही प्राप्त होता हो, ऐसी बात नहीं है; परंतु आध्यात्मिक साधकको धन तभी प्राप्त होता है, जब उसका जीवन पूर्णतया पवित्र बन जाता है। जैसा कि श्रीमाँने लिखा है—'जब तुम्हारे पास कुछ नहीं रह जायगा, तब तुम्हें सब कुछ मिल जायगा।' यह रिक्तता और पवित्रताका मार्ग ही साधकके लिये पूर्णताका मार्ग है। श्रीअरविन्दके शब्दोंमें—'विज्ञानकृत सृष्टिमें धन-बल भागवती शक्तिको पुन: प्राप्त करा देना होगा और माँ भगवती अपनी सृष्टि-दृष्टिकी प्रेरणासे जो प्रकार निर्धारित करेंगी, उसी प्रकारसे उसका विनियोग एक नवीन दिव्यीकृत प्राणिक और भौतिक जीवनके सत्य-सुन्दर-सुसंगत संघटन और सुव्यवस्थापनमें करना होगा। पर पहले यह धन-शक्ति उनके लिये जीतकर लौटा लानी होगी और इस विजय-सम्पादनमें वे ही सबसे अधिक बलवान् होंगे, जो अपनी प्रकृतिके इस हिस्सेमें सुदृढ़, उदार और अहंकारनिर्मुक्त हैं, जो कोई प्रत्याशा नहीं करते, अपने लिये कुछ बचाकर नहीं रखते या किसी संकोचमें नहीं पड़ते, जो परमा शक्तिके विशुद्ध शक्तिशाली यन्त्र हैं।'

अतएव हमारा पहला कार्य यही है कि अपने-आपको पूर्णरूपसे भगवान्‌के कार्यके लिये अर्पित कर दें। इसके बाद उनके प्रसादसे विजय-पर-विजय प्राप्त होगी ही।

साधकोंके प्रति—

मुक्ति स्वतः हो रही है

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

जीवमात्र सुख चाहता है। सुख भी ऐसा, जिसमें किसी प्रकारकी कमी न रहे और जिसका कभी नाश न हो। अर्थात् वह अक्षय और अनन्त सुख चाहता है। इसीका नाम तो 'मुक्ति' है अर्थात् दु:खोंका अत्यन्त अभाव हो जाना और आनन्दकी प्राप्ति हो जाना ही मुक्ति है। भगवद्गीतामें छठे अध्यायका बाईसवाँ श्लोक बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इस बातकी कसौटी कसनेके लिये इस श्लोकको पहला स्थान दे दिया जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

जिस लाभके प्राप्त होनेके बाद फिर और कोई लाभ हो सकता है, ऐसा उसके (लाभ प्राप्त होनेवालेके) माननेमें भी नहीं आ सकता। जिसमें स्थित होनेपर वह बड़े भारी दु:खसे भी विचलित नहीं किया जा सकता अर्थात् किसी कारणसे शरीरके टुकड़े किये जायँ, शरीर दो पहाड़ोंके बीचमें आ जाय—ऐसी स्थितिमें भी उसकी जो शान्ति है अथवा उसका जो आनन्द है, उसमें कभी भी कमी नहीं आती। तात्पर्य यह है कि उसको दु:खका स्पर्श ही नहीं होता, ऐसा बड़ा भारी लाभ हो जाता है। दु:खोंसे, कर्मोंसे, जन्म-मरणसे मुक्त हो जाना, छूट जाना—यह जो 'मुक्ति' कहलाती है, यह तो बड़ी सीधी और सरल बात है। शास्त्रोंमें दोनों तरहकी बातें आती हैं—कठिनताकी बात भी आती है और सुगमताकी बात भी। गीतामें कहा गया है कि परमात्मतत्त्व कड़ी सुगमतासे प्राप्त किया जा सकता है—'**सुसुखं कर्तुम्।**' वही अविनाशी है, प्राप्त होनेके बाद फिर उसका विनाश होता ही नहीं।

ऐसी सुगम बात क्या है? जो संसार आज अपना दीखता है; शरीर, कुटुम्ब, धन-सम्पत्ति, मकान-जमीन आदि अपने दीखते हैं, ये सब पहले अपने साथ थे नहीं और बादमें अपने साथ रहेंगे नहीं, तो जो सदा अपने साथ नहीं रहेंगे, बस, केवल उनको अपना नहीं मानना है—यह कितनी सुगम बात है। गीतामें बन्धनसे छूटे हुए गुणातीत पुरुषोंके लक्षणोंमें आया है—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥

(१४। २४-२५)

गुणातीत पुरुषकी सुख-दु:खमें भी समता रहती है। उसके अन्त:करणमें हानि-लाभमें भी समता रहती है। निन्दा-स्तुतिमें भी समता रहती है; क्योंकि वह स्वतः अपने स्वरूपमें स्थित है।

जिन रुपयोंमें अपनापन नहीं है, जिन मकान-जमीनमें अपनापन नहीं है, जिन कुटुम्बियोंमें अपनापन नहीं है, उनके बनने-बिगड़नेका असर अपने ऊपर नहीं पड़ता। संसारमें अरबों आदमी हैं, पर उनके जीने-मरनेका हमपर कोई असर नहीं पड़ता। हम सुन लेते हैं कि किसी स्थानपर इतने आदमी मर गये, बस हम राम-राम-राम—ऐसा कह देते हैं, पर हृदयपर इतनी चोट नहीं पहुँचती। कोई अनजान व्यक्ति धनी हो जाय, तो उससे कोई हर्ष भी नहीं होता। उनके सुख-दु:ख, हानि-लाभमें हमारी समता है। यों तो संसारके बहुत-से धनसे, मकानोंसे, कुटुम्बियोंसे हम मुक्त हैं ही। थोड़े-से रुपयों, थोड़ी-सी जमीन और थोड़े-से मनुष्योंमें ही अपना माननेके कारण हम बँधे हुए हैं। ज्यादा मुक्ति तो हो चुकी। बस, थोड़ी-सी मुक्ति बाकी है।

अब हिम्मत करके इनसे भी मुक्ति कर लें। इनसे मुक्ति करनेमें कोई कठिनता भी नहीं है; क्योंकि धन, मकान, कुटुम्ब पहले अपने थे नहीं और बादमें अपने रहेंगे नहीं। परंतु इनके प्रति हमारी जो यह भावना रहती है कि ये बने रहें—यही बन्धन है। 'ये बने रहें' यह भावना आजतक किसीकी सिद्ध नहीं हुई; क्योंकि सदाके

लिये किसीके साथमें पदार्थ और व्यक्ति नहीं रहते। हम भी यह जानते हैं कि ये हमारे साथ नहीं रहेंगे, फिर भी भावना यह रहती है कि ये हमारे साथ बने रहें। जो पहले थे नहीं और बादमें रहेंगे नहीं, उनके रहने और न रहनेमें हम अपना आग्रह छोड़ दें तो क्या बिगड़ जायगा? दुनियाके अन्य व्यक्तियों और वस्तुओंसे हम मुक्त हैं, छूटे हुए हैं, हमें उनका बन्धन नहीं है। यदि थोड़ी-सी वस्तुओंको भी बहुतके साथ मिला दें अर्थात् इनसे आसक्ति उठा दें तो हम अभी मुक्त हो जायँ। वैसे विचारपूर्वक देखा जाय तो हम मुक्त हो ही रहे हैं, प्रतिदिन छूट ही रहे हैं। जिस समय हम पैदा हुए थे, उस समय हमारी जितनी आयु थी, अब उतनी नहीं है। जीवनके बहुत-से दिन कम हो गये, मृत्यु समीप आ गयी है। छूटनेका दिन समीप आ रहा है। वह दिन आये, उससे पहले ही हम मनसे इन्हें छोड़ दें, तो निहाल हो जायँगे।

अपने माने हुए प्राणी-पदार्थोंका वियोग अवश्यम्भावी है। वियोग होगा, होगा ही नहीं, वियोग तो प्रतिक्षण हो रहा है। जैसे जिस घरमें आप रह रहे हैं और आयुके हिसाबसे मान लें आपको साठ वर्ष रहना है, जब तीस वर्ष बीत चुके हैं तो अब आप उस घरमें साठ वर्ष तो नहीं रहेंगे। अब तीस वर्ष तो पूरे हो ही गये और तीस वर्ष ही रह जायँगे। इनमें जो वर्ष बीते हैं, वे भी एक-एक दिन करके बीते हैं। हम रह रहे हैं, हम जीवित हैं, जी रहे हैं—इस ओर वृत्ति रहनेसे हम मर रहे हैं, यह बात सच्ची होते हुए भी मानना बुरा लगता है। परंतु बुरा लगे तो क्या करें? बात तो सच्ची और पक्की है; क्योंकि साठ वर्ष जीनेवाला मनुष्य है और वह चालीस वर्षका हो गया, तो वह आगे साठ वर्ष जीयेगा क्या? अब तो उसके जीवनके बीस वर्ष ही रहे। इन वर्षोंमें भी दिन-प्रति-दिन उसकी आयु समाप्त हो रही है।

यह शरीर तो दिन-प्रतिदिन जा रहा है, मर रहा है। एक दिन ऐसा होगा कि लोग कहेंगे—यह आज मर गया, तो वह आज नहीं मरा है, प्रत्युत जिस दिन जन्मा था, उसी दिनसे मरना आरम्भ हो गया था। मरते-मरते उसका मरना आज पूरा हो गया। जैसे वह चला गया, ऐसे ही सभी जानेवाले हैं। आप अपनी ओरसे जानेवालोंका साथ छोड़ दें। साथ छोड़नेका अर्थ यह है कि 'ये हमारे साथ सदा बने रहें' यह भावना हटा दें। यह आग्रह, यह भावना छोड़ दें, पर वे साथ भी रहेंगे तो क्या हानि है? ज्यादा चाहनेसे अधिक दिन रह जायँगे और न चाहनेसे थोड़े दिन रहेंगे, चले जायँगे, ऐसी बात तो है नहीं। जितने दिन रहना है, जितनी आयु है, उतने दिन तो वे रहेंगे ही। पर मनमें इच्छा है कि ये अधिक दिन बने रहें। ऐसी स्थितिमें वे चले जायँगे तो मनको बड़ा संताप होगा। इसलिये इनको हम मनसे पहले ही छोड़ दें तो ये चले जायँ तो मौज और रहें तो मौज; क्योंकि हम पहलेसे ही यह जानते थे कि ये चले जायँगे। तो यह ज्ञान दृढ़तासे मान लें कि इनका वियोग अवश्यम्भावी है, होनेवाला ही है। ऐसा सोच लेनेसे बड़ी शन्ति होती है, यह हमारा-आपका—सबका अनुभव है।

सूर्योदय होता है तो सब लोग अपने-अपने काममें लग जाते हैं, प्रकाश हो जाता है, सब कुछ दीखने लग जाता है, पर जब सूर्यास्त हो जाता है, तब रात हो जाती है। सब काम-धन्धे बन्द हो जाते हैं। दीखना बन्द हो जाता है। अँधेरा हो जाता है, ऐसा होनेपर भी कोई रोता नहीं। किंतु जब कोई घरका खास आदमी मर जाता है, तब कहते हैं कि 'क्या करें, हमारे घर तो अँधेरा हो गया।' अरे! एक आदमीके मरनेपर एक ही घरमें अँधेरा हो गया, यह तो दीखता है; पर सूर्यास्त होनेपर सारी दुनियामें अँधेरा हो गया, यह नहीं दीखता। कारण क्या है? कारण यही है कि सूर्य उगता है तो भावना यह रहती है कि समयपर सूर्यास्त होगा। इसलिये सूर्यके रहते-रहते घरका, खेतका काम जल्दी कर लो। 'यह अवश्य ही अस्त हो जायगा'—मनमें पहलेसे ही यह भावना रहनेके कारण सूर्यास्त होनेपर, अँधेरा होनेपर संताप नहीं होता। प्रत्युत अँधेरा होनेपर हम यही कहते हैं कि दियासलाई

लाओ भैया! मोमबत्ती लाओ, प्रकाश करो, बिजली जलाओ आदि प्रकाशके साधन करते हैं, पर रोते तो नहीं। क्यों नहीं रोते? मनमें दृढ़ भावना रहती है कि यह तो होनेवाला ही था। इसलिये संतोंने कहा है कि—

उगा सो ही आँथवे फूला सो कुम्हलाय।
चिण्या देवल ढह पड़े जाया सो मर जाय॥

दुनियामें बड़े-बड़े वृक्ष हैं, वे गिर पड़ते हैं और जो जन्मा है, वह मरता है, तो मरनेमें कौन-सी नयी बात हो गयी? परंतु उससे आशा करना, यह दुःखका कारण है। जवान लड़केके मरनेपर बूढ़ी-बूढ़ी माइयाँ रोती हैं और कहती हैं कि हमने ऐसा नहीं जाना था कि यह 'गलनी माटी'का है। गलनेवाली मिट्टी—छिन्न-भिन्न होनेवाली मिट्टी नहीं रहेगी अर्थात् हमारे सामने यह बालक चला जायगा, ऐसा हमने नहीं समझा था। हमने ऐसा नहीं जाना था कि जवान बेटा चला जायगा। समझा नहीं था तो भूल समझकी हुई, जानेवालेकी तो भूल नहीं हुई है? वह तो अपने समयपर गया है।

मैंने भी अपने कानोंसे गाँवमें लोगोंको कहते सुना है—'महाराज! गलनी माटीका था!' तो पक्की माटीका कौन है? सब-के-सब तो गलनी माटीके ही हैं। ये कबतक रहेंगे? इनके रहनेका कोई भरोसा नहीं है, पर जानेकी बात अवश्य है, ये जायँगे अवश्य, रहेंगे नहीं। इसलिये सबके साथ उत्तम-से-उत्तम और बढ़िया-से-बढ़िया बर्ताव करो—

सबसे हिलमिल चालिये नदी नाव संयोग।

जैसे नदीके उस पार जाना है, तो उसे पार करनेके लिये नावमें कई लोग बैठें; परंतु पार उतरनेके बाद सब अपना-अपना रास्ता लेते हैं; इसी प्रकार हमलोग भी इस घरमें आकर बैठ गये हैं और फिर समय होनेपर सब अपना-अपना रास्ता लेंगे—यह सब 'नदी-नाव-संयोग' है, इसलिये 'सबसे हिल-मिल चालिये।' सबसे अच्छा-से-अच्छा, उत्तम-से-उत्तम बर्ताव करो। यहाँ रहनेका कोई भरोसा नहीं है, यहाँसे जानेकी बात पक्की है। रहनेकी बात कच्ची होनेपर भी हमने कच्चीको पक्की और पक्कीको कच्ची मान लिया। इसीसे रोना पड़ता है। यह भूल तो अपनी ही की हुई है। इसलिये पहलेसे समझ लो कि यह नेह-सनेह टूटनेका है, यह रहनेका है ही नहीं। यह याद रखो कि यह मृत्युलोक है, मरनेवालोंका लोक है। यह मरणधर्माओंका संसार है। इसमें सब-के-सब मरनेवाले ही रहते हैं। कोई भी रहनेवाला नहीं रहता। फिर आप कहाँ रह जायँगे और कैसे रह जायँगे? यहाँ तो सब-के-सब जानेवाले ही हैं। इस बातको, इस भावको दृढ़तासे हृदयमें धारण कर लो और सबसे अच्छे-से-अच्छा बर्ताव करो। क्यों किसीसे बुरा बर्ताव करोगे? थोड़े दिन रहना है, इसलिये उत्तम बर्ताव करो, श्रेष्ठ बर्ताव करो।

गृहे पर्यन्तस्थे द्रविणकणमोषं श्रुतवता
स्ववेश्मन्यारक्षा क्रियत इति मार्गोऽयमुचितः।
नरान्गेहाद्गेहात् प्रतिदिवसमाकृष्य नयतः
कृतान्तात् किं शङ्का न हि भवति रे जागृत जनाः॥

(शिल्हनमिश्रकृत 'शान्तिशतक' से)

पड़ोसके घरमें चोरी होनेकी बात सुनकर अपने घरका प्रबन्ध किया जाता है, यह उचित ही है, किन्तु घर-घरसे प्रतिदिन मनुष्योंको पकड़कर ले जाते हुए कालसे क्या कुछ भी भय नहीं होता? अतएव हे मनुष्यो! अब भी सावधान हो जाओ।

भोग और प्रसाद

(आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

हमारी पूजा-उपासनामें नित्यशः व्यवहृत होनेवाले 'भोग' और 'प्रसाद' शब्दोंमें साधनाका एक गम्भीर रहस्य अन्तर्निहित है। उपास्य-देवको भक्तिपूर्वक निवेदित किये गये भक्ष्य, भोज्य और पेय आदि पदार्थोंको नैवेद्य कहा जाता है। इस 'नैवेद्य' को ही भोग या प्रसाद भी कहा जाता है। आपाततः ये दोनों शब्द परस्पर पर्यायसे प्रतीत होते हैं, किंतु इनके अर्थोंमें एक तात्त्विक क्रम है। जो पदार्थ हमें अपने प्राक्तन-कर्मों (प्रारब्ध)-से प्राप्त होते हैं, वे चाहे सुखरूप प्रतीत हों या दुःखरूप; शास्त्रीय दृष्टिसे 'भोग' कहे जाते हैं। सुखरूप माने जानेवाले भोगोंकी सुखरूपता भी एक भ्रममात्र है, वस्तुतः तो ये सभी 'दुःखयोनि' अर्थात् दुःखप्रद ही हैं। जो विषय हमें प्रिय लगते हैं, उनकी अप्राप्ति तथा विनाशमें दुःख होता है और जो बुरे समझे जाते हैं, उनका संयोग दुःखद होता है, इसलिये गीताकारने कहा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

अतएव यदि इन्हें अपना मानकर सेवन करेंगे तो कष्ट ही होगा, किंतु शरीर-यात्रा तथा व्यवहारकी उपपत्ति[1] के लिये स्वरूपतः इनका त्याग करना भी नितान्त असम्भव है, ऐसी दशामें इनका शोधन करनेहेतु इन्हें भगवद्भोग्य बना देना ही समीचीन[2] मार्ग है। हमारे भोग चाहे सुखवत् प्रतीत हों या दुःखवत्, कभी हमें सच्ची प्रसन्नता नहीं दे पाते। इसका कारण है कि हमें उनके हानोपादान[3] की चिन्ता स्वयं करनी पड़ती है। इस प्रकार हमारे तथाकथित 'सुख' में भी दुःखका सूक्ष्म किंतु व्यापक अनुवेध[4] हमें स्वाभाविक प्रसन्नतासे वंचित रखता है। जिस क्षण ये भगवदर्पित हो जाते हैं, उस समय भोग न रहकर 'प्रसाद' बन जाते हैं। प्रसादका तात्पर्य ही है—'**प्रसादस्तु प्रसन्नता**'।

इनका भौतिकस्वरूप तो वही रहता है, किंतु अब ये 'विषय-विष' न रहकर 'परम-स्वास्थ्यकर औषध' बन जाते हैं, भगवान् शंकराचार्यने भगवद्गीताकी टीकामें 'प्रसाद' या प्रसन्नताका अर्थ यही 'स्वास्थ्य' (अपने स्वरूपमें स्थित होना) स्वीकार किया है।

प्रसादः प्रसन्नता—स्वास्थ्यम्।

(गीता-शांकरभाष्य २। ६४)

इसकी और अधिक व्याख्या करते हुए श्रीमधुसूदन सरस्वतीने इसे परमात्माके साक्षात्कारकी योग्यता कहा है—

प्रसादं प्रसन्नतां चित्तस्य स्वच्छतां परमात्मसाक्षात्कारयोग्यतामधिगच्छति। (गीता-मधुसूदनी टीका, वही)

अर्थात् प्रसाद, प्रभुकी ओरसे भक्तको एक ऐसा आश्वासन है, जहाँ समस्त दुःख स्वयमेव तिरोहित हो जाते हैं—'**प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।**' (गीता २। ६५)

यह आश्वासन परम मधुर और सर्वात्मना शिरोधार्य होता है। इसीलिये प्रतीकभूता वस्तुको प्रसादके रूपमें सादर सिरसे लगाते हैं। मधुर तो हमें भोग भी लगते हैं, किंतु उनका यह माधुर्य प्रातिभासिक अथ च, अनित्य होता है। ये ही जब भगवदर्पित होकर 'प्रसाद' बनते हैं, तब उनमें वास्तविक माधुर्यकी अभिव्यक्ति होती है—ऐसा माधुर्य जिसके एक सीकरके लिये स्वर्गका शासक भी हाथ फैला देता है।

अतएव इन शब्दोंका यही क्रम है, पहले 'भोग' और फिर 'प्रसाद'। आशय यह है कि यदि हम अपने भोगोंको भगवद्भोग्य बना देंगे, तो फिर वे 'भोग्य' न रहकर सहज प्रसन्नता और आनन्दके संवाहक 'प्रसाद' बन जायँगे।

श्यामसुन्दर स्वयं हमारे भोगोंकी तिक्तता स्वीकार करके हमें माधुर्य वितीर्ण करते हैं और इसीलिये अपने प्रिय भक्तोंके लिये उनका यह उद्घोष भी है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९। २७)

१. सफलता, २. उत्तम, ३. त्याग और ग्रहण, ४. बार-बारकी चुभन।

'अवसि चलिअ बन'

[भरत-चरितका एक पावन-प्रसंग]

(श्रीसंजीवकुमारजी भारद्वाज, बी०काम०, एल-एल०बी०)

गौरवशाली इक्ष्वाकुवंशीय अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथका श्रीरामके वियोगमें देहत्याग हो चुका था। भरतजीने महाराजके निमित्त गुरु वसिष्ठजीकी आज्ञासे उन्हींकी देखरेखमें स्मृतियों, वेद-पुराणोंमें उल्लिखित विधिसे दशगात्रका विधान पूर्णकर तथा भूदेव ब्राह्मणोंको विविध प्रकारके दानसे सन्तुष्टकर, अपने सन्तति-धर्म और सनातनधर्मके अबाध जीवन-मूल्योंका निर्वहण किया। गौरवशाली अतीत और वर्तमानको रखनेवाली इक्ष्वाकुवंशीय अयोध्याने कुछ ही समयमें काफी उतार-चढ़ावोंको आत्मसात् किया है। इस समय अयोध्याकी व्यथा, चिन्ता और व्याकुलता वर्णनातीत है। कुछ ही दिवस बीते हैं, जब अयोध्या और इसके भाग्यशाली वासियोंके जीवनधन श्रीराम वल्कल वस्त्र पहने अरण्यवासीरूपमें, पिताकी आज्ञाको शिरोधार्य करते हुए श्रीजानकी और अनुज लक्ष्मणसहित अयोध्यासे वनको प्रस्थान कर चुके हैं। और अब महाराजकी देहका अवसान; मानो असंख्य वज्रपात एक ही समयमें हुए हैं, इस गौरवशाली नगरीपर। प्रेममूर्ति श्रीभरतजीकी इस समयकी व्यथा, आत्मग्लानि, अन्तस्‌का द्वन्द्व, उनका बारम्बार श्रीरामजानकीके स्नेह एवं पिताके वात्सल्यकी स्मृतियोंको स्मरणकर भावुक हो अचेत हो जाना, भाषाके शब्दकोशकी परिधिके सर्वथा बाहर; अकल्पनीय और वर्णनातीत है।

इक्ष्वाकुवंशीय चक्रवर्ती सम्राटोंकी इस गौरवशाली नगरी अयोध्याको इस समय अपने शासककी नितान्त आवश्यकता है। गुरुजनों, मुनियों और सभासदोंने विचार किया, तब गुरु वसिष्ठने श्रीभरतजी और शत्रुघ्नकुमारको बुला भेजा।

श्रीराम-जानकीके चरणोंका हृदयमें ध्यान करते हुए पिताके वात्सल्यकी स्मृतियोंके स्मरण-पाशसे आबद्ध, आत्मग्लानि, अपराधबोध और अन्तस्‌के द्वन्द्वके मेघोंसे आच्छादित, सम्पूर्ण घटनाओंके लिये स्वयंको दोषी मानते हुए श्रीभरतजीने अनुज शत्रुघ्नकुमारके साथ राजसभामें बड़े भारी मनसे प्रवेश किया, गुरु वसिष्ठ उन्हें अपने समीप बैठाकर एवं उनकी अनुपस्थितिमें अयोध्यामें घटित सम्पूर्ण घटनाक्रम बतलाकर बोले—

'महाराजने धर्म और सत्यकी प्रतिष्ठाके लिये अपने प्राणोंका निसर्ग कर दिया।'

'महाराजका प्रभाव चौदह लोकोंमें प्रत्यक्ष प्रकट था, है और रहेगा।'

'धर्मनिष्ठ, सत्यनिष्ठ, कर्मनिष्ठ, शील-स्वभावके महासिन्धु, उदार हृदय, जितेन्द्रिय, प्रजापालनमें अनवरत गतिशील, शत्रुहीन, दूरद्रष्टा, अत्यन्त तेजसम्पन्न ऐसे सर्वगुणसम्पन्न हमारे महाराजके गुणोंका वर्णन-चिन्तन करते हुए ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र और दिक्पाल कभी भी उपराम नहीं हुए।'

जिनके राज्यकालमें अयोध्याने वैभव, सम्मान और उत्थानकी पराकाष्ठाको प्राप्त किया, ऐसे महाराज शोक करनेयोग्य?

कदाचित् नहीं।

पुनः गुरु वसिष्ठजी श्रीरामका स्मरण करते हुए बोले—

'श्रीरामके गुण, शील, स्वभाव, जितेन्द्रियता, धर्मनिष्ठा, सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता, समस्त चराचरके प्रति निर्मल दयाभाव, निर्मल हृदयकी पराकाष्ठाका वर्णन वाणीसे होना सर्वथा असम्भव है।'

श्रीरामके गुणोंके विस्तारका, शील-स्वभावका, जितेन्द्रियताका, धर्मनिष्ठा, सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणताका एवं समस्त जड़-चेतनके प्रति अनन्य दयाभावका वाणी स्पर्श भी नहीं कर सकती है कभी।

लजा जाती है वह भी!

न खिन्नता न प्रसन्नता!

न हर्ष न विषाद!

समत्व!

कितनी पवित्रता है इस नाममें!

कैसा उदात्त चरित्र! न भूतो न भविष्यति!

पिताके केवल एक वाक्यपर वल्कल वस्त्र पहने अरण्यवासीरूपमें वनको प्रस्थान।

जानकी एवं अनुज लक्ष्मणकी श्रीराममें प्रीति और उनके प्रति समर्पणके भाव वाणीका विषय नहीं।

यह सभी कुछ कहते-कहते गुरु वसिष्ठजीके नेत्रोंमें जल भर आया। कण्ठ अवरुद्ध हो गया, पुन: स्वयंको सँभालते हुए बोले—'महाराजने राजपद तुम्हें दिया है।'

'इस समय सभी मन्त्री, पुरवासी और आपके स्वजन आपके अभिषेककी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

अपने धर्मनिष्ठ, सत्यनिष्ठ और कर्तव्यनिष्ठ पूर्वजोंसे पालित और पोषित इस गौरवशाली और वैभवशाली अयोध्याके राजपदको ग्रहणकर इसके सुचारु संचालन और रक्षाके कर्तव्यका भलीभाँति निर्वहण करें।

'महाराजको वचन ही प्रिय थे, प्राण नहीं!'

भरतजी भरे नेत्रों और रुँधे कण्ठसे दोनों हाथोंको जोड़े हुए अभिषेकके लिये रखी हुई सामग्रीकी प्रदक्षिणा करते हुए बोले—'परंतु रघुकुलमें ज्येष्ठ पुत्र ही राजाकी पदवी पाता है न!'

'मेरे प्रभु बड़े भैया राम ही इस सिंहासनको सुशोभित करेंगे।'

'चौदह वर्षके कठोर अरण्यवासका अधिकारी तो केवल मैं ही हूँ।'

माँ कौसल्याने गुरु वसिष्ठके वाक्योंका अनुमोदन किया—'भरत! अयोध्याके राजसिंहासनको इस समय कुशल नेतृत्वकी आवश्यकता है। गुरु वसिष्ठकी आज्ञाका अनुकरण करो, इसमें ही सबका लाभ है।'

भरत—'किंतु मैं! मेरा हृदय इसे स्वीकार नहीं कर सकता।'

'आप आदरणीयोंकी वाणीका प्रत्युत्तर! मेरा ये अक्षम्य अपराध! और कितनी धृष्टता करूँगा मैं?'

'मेरे कारण ही सभी उपद्रव हुए, भैया श्रीराम, माँ जानकी और अनुज लक्ष्मणका वनगमन, अपनी प्रजाके अत्यन्त प्रिय और आत्मीय महान् गुणसम्पन्न महाराजकी देहका अवसान, पुरवासियों-स्वजनोंकी असहनीय व्यथा, उनके मन, मस्तिष्क, हृदयपर असह्य पीड़ाका बोझ।'

'व्यर्थ ही विधाताने मुझे महाराज दशरथका पुत्र और श्रीरामका अनुज कहलानेका सौभाग्य प्रदान किया है।'

'आह! काल कितना कठोर हो गया है मेरे प्रति।'

'आप सब आदरणीयोंका कहना उचित ही है।'

'परंतु मेरा कल्याण?'

अपने महान् पूर्वजोंसे सदैव पूजित, पालित, पुष्पित रहे इस गौरवशाली और पवित्र सिंहासनको ग्रहणकर सम्भवत: मैं नरकमें भी स्थान न पाऊँ।

मेरे जीवनकी सफलता, पुरुषार्थ, साधन और साध्य—वह तो केवल मेरे प्राणाधार श्रीरामजी और माँ जानकीजीके श्रीचरणोंमें उनकी अनन्य सेवा, उनके प्रति सर्वस्व समर्पणमें है।

'मेरे प्रभु, मेरे भैया, मेरे जीवनसर्वस्व मेरे रघुनाथजीने तो कभी स्वप्नमें भी अपने शत्रुका अनिष्ट नहीं सोचा।'

मेरे रघुनाथजी शील-संकोचके महासिन्धु, अत्यन्त सरल हृदय, दीनोंपर सदैव दयाभाव रखनेवाले, दूसरेका अपराध न देखनेवाले, शरणागतवत्सल, समस्त गुणोंके धाम हैं; वे मुझे अवश्य अपनायेंगे।

मेरी इन सभी धृष्टताओं, अवज्ञाओं एवं अपराधोंको अवश्य क्षमा कर देंगे।

मैं कल प्रात:काल अवश्य ही श्रीरघुनाथजीके दर्शनके लिये वनको प्रस्थान करूँगा।

यह कहते-कहते प्रेममूर्ति श्रीभरतजीका शरीर रोमांचसे पुलकित हो उठा। वे भाव-समाधिमें पहुँच गये। उपस्थित समाज शोकसिन्धुसे परित्राण प्राप्तकर भरतजीकी सराहना करता हुआ इस प्रेमके महासिन्धुमें अवगाहन करने लगा। चारों ओरसे ***'अवसि चलिअ बन'*** की ध्वनि होने लगी।

अंग्रेजीके कवियोंपर गीताका प्रभाव

(डॉ० श्रीरामशंकरजी द्विवेदी)

श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा शास्त्र है, जिसे यथार्थ रूपमें लोक-कल्याणका प्रतिपादक कहा जा सकता है। इसकी लोकप्रियताका अन्दाजा इसीसे लगाया जा सकता है कि विश्वके बुद्धिजीवियोंकी मेधाके लिये यह आज भी एक चुनौती बना हुआ है। इसपर हजारों भाष्य, टीकाएँ लिखी गयीं और आज भी यह क्रम जारी है।

क्रान्तिकारी आनन्दमठके साथ-साथ गीताकी पोथी भी अपने हाथमें रखते थे। गीता युद्धका शास्त्र है, लेकिन मानवीय मनोवृत्तियोंको साम्यमें कैसे स्थित किया जा सकता है, यह बतानेवाला आचार-शास्त्र भी है। उसमें उपनिषदोंका निचोड़ है। उसके प्रभावका आकलन यों किया जा सकता है कि अमेरिकी दार्शनिक थोरो और इमर्सन दोनों गीतासे प्रभावित थे। थोरो कहते हैं—'हर सुबह मैं अपने हृदय और मस्तिष्कको श्रीमद्भगवद्गीताके उस अद्भुत और दैवी दर्शनसे स्नान कराता हूँ, जिसकी तुलनामें हमारा आधुनिक विश्व और उसका साहित्य बहुत छोटा और तुच्छ जान पड़ता है'—

In the morning I bathe my intellect in the stupendous and cosmogonal philosophy of the Bhagavad Geeta in comparison with which our modern world and its liturature seem puny and trivial.

इमर्सन कहते हैं कि 'मुझे गीताके कारण एक भव्य दिवसकी प्राप्ति हुई। ऐसा लगा कि जैसे एक साम्राज्य हमसे बात कर रहा हो। उसमें कुछ भी छोटा अथवा बेकार नहीं था। सब कुछ विशाल, शान्त एवं निरन्तर; एक ऐसी प्राचीन प्रज्ञाका स्वर जिसने एक अन्य युग एवं वातावरणमें उन सभी प्रश्नोंपर विचार करके निर्णय दिया, जिनपर हमारा ध्यान केन्द्रित रहता है—

I owed a magnificent day to the Bhagavad Geeta. It was as if an empire spoke to us, nothing small or unworthy, but large, serene, consistent, the voice of an old intelligence which in another age and climate had pondered and thus disposed of the same questions which exercise us.

स्वामी विवेकानन्दके कार्यमें सहयोगिनी और उनकी मित्र कुमारी जोसेफिन मेक्लॉउड जब स्वामी विवेकानन्दसे मिलीं, तब उन्हें मानसिक सम्पदाके रूपमें पूरी गीता कण्ठस्थ थी।

उन्होंने स्वामी विवेकानन्द-विषयक अपने संस्मरणोंमें लिखा है, एक दिन मैं श्रीमती रोथलिस-बर्जरके साथ जाकर बोली—'स्वामीजी! क्या आप मुझे बतायेंगे कि ध्यान कैसे किया जाता है?' उन्होंने कहा, 'एक सप्ताह तक 'ॐ' पर ध्यान करो और उसके बाद आकर मुझे बताना।' एक सप्ताहके बाद हम फिर गये और श्रीमती रोथलिस बर्जरने कहा—'मुझे एक रोशनी दिखती है।' उन्होंने कहा, 'अच्छा है, करती रहो।'

मैंने कहा, 'अरे नहीं, वह तो हृदयमें एक ज्योति-सी दिखती है।' उन्होंने मुझसे कहा, 'करती रहो।' बस, इतना ही उन्होंने मुझे सिखाया था; परंतु हम उनसे मिलनेके पहले भी ध्यान किया करती थीं और हमें गीता कण्ठस्थ थी। मुझे लगता है कि उसीने हमें उनकी प्रचण्ड जीवन-शक्तिको पहचाननेके लिये प्रस्तुत किया था। वे दूसरोंके अन्दर जिस साहसका संचार कर देते थे, सम्भवतः इसीमें उनकी शक्तिका बोध होता था।

एक और परिदृश्य है—एक दिन जोसेफिन मेक्लाउडने भगवद्गीतापर स्वामी विवेकानन्दका भाषण सुना। इस घटनाका स्मरण करते हुए उन्होंने लिखा है, इस वक्त एक सौसे अधिक श्रोता उपस्थित थे, वे सब कमरेमें बैठे हुए थे। जिस वक्त स्वामीजीने बोलना प्रारम्भ किया। मैंने अपनी नजर उठायी। अपनी इन आँखोंसे, इन्हीं-इन्हीं आँखोंसे (जोसफिनने अपनी आँखोंकी ओर इशारा करते हुए कहा) देखा कि साक्षात् कृष्ण खड़े हुए हैं और गीताका उपदेश दे रहे हैं। यह मेरा पहला अद्भुत दिव्य-दर्शन था। मैं देखती रही, देखती

रही निर्निमेष—मुझे सिर्फ वही रूप दिखायी देता रहा, बाकी सारे दृश्य लुप्त हो चुके थे।

भगिनी निवेदिताने भी लिखा है कि स्वामीजीसे मिलनेके पहले मुझे गीता कण्ठस्थ थी। भारतके सम्बन्धमें यही मेरी पहली जानकारी थी।

'पेंगुइन इण्डिया' दिल्लीसे 'भारतमें ईसा मसीह' नामक एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक निकली है। उसमें ऐतिहासिक प्रमाणोंके आधारपर यह सिद्ध किया गया है कि भारतमें आकर जीसस क्राइस्टने गीताके साथ धम्मपद पढ़ा था। इसीलिये उनके पार्वत्य प्रवचनों (Surmon on the mountain)-पर गीताके कर्मयोगका प्रभाव है।

इधर अभी हालमें एक भारतीय अनुसन्धानकर्ताने यह स्पष्ट शब्दोंमें प्रतिपादित कर दिया है कि अंग्रेजी काव्यकी रोमाण्टिक धारापर भारतीय प्रभाव कुछ कम नहीं था। इस अनुसन्धानमें उन्हें बीस वर्ष लगे। उनका नाम डॉ० कृष्णगोपाल श्रीवास्तव है। उन्होंने अनुसन्धानके बाद यह प्रमाणित किया है कि श्रीमद्भगवद्गीताके प्रभावसे रोमाण्टिक युगके वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, शेली, कीट्स, बॉयरन और वाल्टर स्कॉट-जैसे प्रमुख कवि गहरे रूपमें प्रभावित थे। उनकी कवितापर इस महान् ग्रन्थका स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

श्रीमद्भगवद्गीताके अनुशीलनसे इन कवियोंने जीवन और आत्मा-सम्बन्धी जिन मूल्योंको अपनाया था, वे हैं पुनर्जन्म, कर्मका सिद्धान्त, जगत्की सत्ता, आत्म-तत्त्वकी अमरता, अवतारवाद इत्यादि। इन मूल्योंने ही रोमाण्टिक कवियोंको विशेष रूपसे मोहित किया था। उनकी कविताओंमें बहुतसे अंश अत्यन्त दुर्बोध और मन, बुद्धिकी समझसे परे हैं। यदि उनपर गीताके प्रकाशमें विचार किया जाय, तो वे एकदम स्पष्टरूपसे उद्भासित हो उठते हैं।

अठारहवीं शताब्दीमें प्राच्यविद् चार्ल्स विलकिन्स, सर विलियम जोन्स आदिने भारत-विद्याकी जो खोज की थी, उसीके परिणामस्वरूप प्राच्य देशमें नवजागरणका सूत्रपात हुआ था। यह नवजागरण वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पुरातत्त्व आदिकी खोजके क्षेत्रमें था। विलकिन्सने गीताका अंग्रेजी पद्योंमें अनुवाद किया था और वह अनुवाद लन्दनमें १७८५ में प्रकाशित हुआ था। कहना अतिशयोक्ति न होगी कि अंग्रेजीके रोमाण्टिक कवियोंने विलकिन्सकृत गीताके अनुवादको मात्र पढ़ा ही नहीं था, गीताके उपदेशोंने उनके मर्मको भी छू लिया और उसीकी ज्योतिसे उनकी कवितामें और चमक आ गयी थी। भारतमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीके पहले गवर्नर जनरल रहे वारेन हेस्टिंगने चार्ल्स विल्किन्सको गीताका अनुवाद करनेके लिये आर्थिक सहयोग दिया था और उसके कार्यकी प्रशंसा करते हुए उसके द्वारा अनूदित गीताकी एक प्रति ईस्ट इंडिया कम्पनीके चेयरमैनको भी भेंट की थी।

आत्मचेतनासम्पन्न बांगलाके शीर्ष कथाकार शीर्षेन्दु मुखोपाध्यायने इस सम्बन्धमें अपनी टिप्पणीमें कहा है कि प्रोफेसर श्रीवास्तवका यह दावा खारिज करनेयोग्य नहीं है। इसी बीच उनके इस अनुसन्धानने स्वयं अंग्रेजोंके देश ब्रिटेनमें हलचल मचा दी है। इस सन्दर्भमें बी०बी०सी० लन्दनने डॉ० श्रीवास्तवका एक साक्षात्कार भी प्रसारित किया था।

डॉ० कृष्णगोपाल श्रीवास्तव ग्लासगो विश्वविद्यालयमें अतिथि प्राध्यापक हैं। गीताके सम्बन्धमें लिखे गये उनके लेख सौन्दर्य-शास्त्रकी ब्रिटिश पत्रिका 'एक्सप्लिकेट'में नियमित रूपसे प्रकाशित होते रहते हैं। ब्रिटेन और अमेरिकाकी अन्य पत्र-पत्रिकाओंमें भी वे लिखते रहते हैं। इसी कारण मैकमिलन इण्डियासे प्रकाशित उनका ग्रन्थ 'भगवद्गीता एण्ड दि इंग्लिश रोमाण्टिक मूवमेण्ट' पाठकोंको विशेष रूपसे आकर्षित कर रहा है।

पर, यह तो हुई विदेशोंमें गीताके प्रभावकी बात, वहाँ हलचल मचानेकी बात, अपने देशमें उसका प्रभाव कहाँ है? 'गीता तो अपनी ही थाती है' ऐसा माननेवाले भारतके कवि और लेखकोंको भी गीतासे सतत प्रेरणा लेते रहना कल्याणकारी होगा।

प्रलय नहीं, लयके देवता हैं भैरवजी

(श्रीसलिलजी पाण्डेय)

देवाधिदेव महादेवके आज्ञाचक्र (भौंहोंके मध्य)-से प्रकट भैरवजीका अवतरण प्रलयको रोककर लयात्मकताको बनाये रखनेके लिये हुआ था। शिवमहापुराणकी विद्येश्वर-संहितामें आयी कथाके अनुसार सृष्टिके ध्वंसकी स्थिति उत्पन्न होनेपर महादेवजीको कुछ कठोर निर्णय लेने पड़े। सृष्टिकी रचना करके ब्रह्माजीने चारों दिशाओंको देखा। ब्रह्मा चतुर्मुखी हो गये। उन्हें खुदपर अभिमान हो गया। वैकुण्ठकी ओर नजर दौड़ायी तो पंचमुखी हुए। उन्होंने पालनकर्ता विष्णुजीको चुनौती दे दी कि ब्रह्माण्डमें वे सबसे बड़े हैं। यहाँतक कि विष्णुको 'पुत्र' शब्दसे सम्बोधित किया। सृजनकर्ताकी चुनौती पालनकर्ताको नागवार गुजरी और कलहको महाप्रलयतक पहुँचते देख प्रलयके देवता महादेवको आना पड़ा। ब्रह्माके अहंकारसे क्षुब्ध महादेव रुद्रका पद त्याग रौद्र हो गये। रुत+द्रावयतिसे वे रुद्र होते हैं। यानी दुखोंका निवारण करते हैं, लेकिन रौद्र होनेपर संहार करते हैं। लिहाजा उनकी भौंहोंके बीचसे एक तेज प्रकट हुआ, जिससे ब्रह्माके अहंकारी मुख (कपाल)-का संहार हो गया और वे पाँचवें मुखसे हाथ धो बैठे। इसी संहारकर्ता तेजका नाम भैरव पड़ा। अब एक विषम समस्या उत्पन्न हो गयी। ब्रह्माके इस कपालको काटनेका दण्ड तो भैरवको झेलना ही था, इसलिये महादेवने खुदसे बसाई अपनी अविमुक्त नगरी काशीमें ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करनेके लिये भैरवको भेज दिया। ब्रह्महत्या भैरवका पीछा करते काशीतक आयी, लेकिन महादेवके त्रिशूलपर बसी काशीमें भीषण साधनाकर भैरव ब्रह्महत्याके दोषसे मुक्त हो गये।

इस ब्रह्महत्याके दोषसे मुक्तिके पीछे भैरवकी संगीत-साधना प्रतीत होती है। ब्रह्मा वेदके रचयिता होनेके नाते गीतलेखक होते हैं, तो महादेव नादके देवता तथा विष्णु नृत्यके देवता। काशी भगवान् विष्णुको भी बड़ी प्रिय नगरी लगती है। स्कन्दपुराणके काशीखण्डके पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध दोनों खण्डोंमें काशीनगरीके वैशिष्ट्यमें विष्णुजीद्वारा व्यक्त की गयी काशीकी महिमाको समझा जा सकता है। कल-कल करती भागीरथी गंगाकी लहरोंसे भैरवको गायन, वादन और नृत्यका बोध होनेका अनुमान इसलिये लगाना सहज है कि संगीतका आदि राग भैरव और भैरवियाँ हैं। भैरव रागमें राग भैरवसे शिव प्रसन्न होते हैं तो श्रीरागसे देवी-शक्तियाँ। श्रीरागमें गायनसे सूखते पेड़ हरे हो जाते हैं। प्रकृति खिलखिला उठती है। श्रीलक्ष्मी प्रसन्न होती हैं और उनकी ज्येष्ठा बहन दरिद्रलक्ष्मी भागती हैं। श्रीसूक्तमें जिस दरिद्रलक्ष्मीसे मुक्तिकी कामना की गयी है, वह इस रागमें गायनसे सहज सम्भव है। इसी प्रकार मालकोस रागसे पत्थर पिघलकर मोम-जैसे हो जाते हैं। जीवके हृदयको पाषाणवत् होनेसे बचानेमें यह राग सहायक है। इसके अलावा मेघरागसे वर्षा, हिण्डोलरागसे झूला अपने-आप झूलने लगता है, बिना बैलोंके कोल्हू चलने लगते हैं, इन राग भैरवकी छः रागिनियाँ हैं। इन छहों रागिनियोंके छः-छः पुत्र भी हैं। वैसे तो इनके वंश-विस्तारकी अनन्त सीमा है, लेकिन संगीत-विशेषज्ञ ४३६ राग-रागिनियोंमें साधना करते हैं। सिद्ध संगीतज्ञोंने अनिद्रा, अवसाद, तनावसहित अन्यान्य शारीरिक एवं मानसिक बीमारियोंमें इसका सफल प्रयोग किया है। रागभैरवके अति लोकप्रिय गीत 'जागो मोहन प्यारे…'में भगवान्के सामने ग्वाल-बाल और भूपति सब खड़े होकर कृपाकी कामना कर रहे हैं। निहितार्थ तो यही निकलता है कि यह गीत समाजमें समानता, आपसी सद्भाव, 'वसुधैव कुटुम्बकम्'का भाव पैदा करनेके लिये गाया जाता है।

गीत-संगीत व्यक्तिमें सकारात्मक भाव एवं संस्कारके बीज बोनेमें सहायक है। भगवान् विष्णुसे जब नारदजीने पूछा कि आप रहते कहाँ हैं, तो उत्तरमें भगवान् विष्णुने कहा—'**नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद**'॥ यहाँ गायनकी महत्ता दर्शानेके लिये 'गायन्ति'का प्रयोग किया है, ध्यायन्ति या जपन्तिका प्रयोग नहीं किया। इस प्रकार इस रागमें सृष्टिमोहनीसे ब्रह्मा, विश्वमोहिनीसे विष्णु तथा प्रकृतिमोहिनीसे महादेवको प्रसन्न करनेकी क्षमता है।

शिवपुराणकी एक कथाके अनुसार भगवान् शंकरके विनोदभावमें 'काली' कहनेसे दुखी माता पार्वती आदिपर्वतशिखर विन्ध्यपर्वतपर तपस्या करने आयीं, तो ८ भैरव एवं ५ भैरवियाँ उनकी सुरक्षामें आयीं। जिसमें महाभैरव, संहारभैरव, रुद्रभैरव, कालभैरव, क्रोधभैरव, ताम्रचूड़ भैरव और चन्द्रचूड़ भैरवके साथ त्रिपुरभैरवी, कौलेशभैरवी, रुद्रभैरवी, नित्या भैरवी और चैतन्य भैरवियाँ थीं। शास्त्रकारोंके अनुसार कुल ६४ भैरव और इतनी ही भैरवियाँ हैं। इनके नामके अनुसार इनकी प्रकृतिमें अन्तर है। ताम्रभैरव जहाँ लालिमायुक्त हैं, तो चन्द्रचूड़ भैरव महादेवके मस्तकपर शीतलता देनेवाले चन्द्रमाकी प्रकृतिके और रुद्रभैरव अग्नितत्त्वको बढ़ानेका प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार ब्रह्माका कपाल लेकर काशी आये भैरव सहज, सरल एवं शरीरमें बिगड़ते लयको संतुलित करनेवाले देवता हैं। स्पष्ट है, शरीरके लयमें व्यवधानसे व्यक्ति बीमार होता है और चिन्तनमें नकारात्मकता आती है। सदाचार एवं सद्गुणके मरते ही व्यक्तिका शरीर श्मशानके रूपमें हो जाता है। शाश्वत सच्चाई मृत्यु ही है। अतः '**जीवेम शरदः शतम्**' के मार्गपर चलनेके लिये लयके देवताकी उपासना मार्गशीर्ष माहकी कृष्ण अष्टमीको अवश्य करनी चाहिये।

सनत्कुमारकथित श्रीकालभैरवाष्टक

सकलकलुषहारी धूर्तदुष्टान्तकारी रुचिरचरितचारी मुण्डमौञ्जीप्रचारी।
करकलितकपाली कुण्डली दण्डपाणिः स भवतु सुखकारी भैरवो भावहारी॥ १॥
विविधरासविलासविलासितं नववधूरवधूतपराक्रमम्।
मदविघूर्णितगोष्पदगोष्पदं भवपदं सततं सततं स्मरे॥ २॥
अमलकमलनेत्रं चारुचन्द्रावतंसं सकलगुणगरिष्ठं कामिनीकामरूपम्।
परिहृतपरितापं डाकिनीनाशहेतुं भज जन शिवरूपं भैरवं भूतनाथम्॥ ३॥
सबलबलविघातं क्षेत्रपालैकपालं विकटकटिकरालं ह्यट्टहासं विशालम्।
करगतकरवालं नागयज्ञोपवीतं भज जन शिवरूपं भैरवं भूतनाथम्॥ ४॥
भवभयपरिहारं योगिनीत्रासकारं सकलसुरगणेशं चारुचन्द्रार्कनेत्रम्।
मुकुटरुचिरभालं मुक्तमालं विशालं भज जन शिवरूपं भैरवं भूतनाथम्॥ ५॥
चतुर्भुजं शङ्खगदाधरायुधं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं शीलप्रदं शङ्कररक्षणं भजे॥ ६॥
लोकाभिरामं भुवनाभिरामं प्रियाभिरामं यशसाभिरामम्।
कीर्त्याभिरामं तपसाऽभिरामं तं भूतनाथं शरणं प्रपद्ये॥ ७॥
आद्यं ब्रह्म सनातनं शुचिपरं सिद्धिप्रदं कामदं
सेव्यं भक्तिसमन्वितं हरिहरैः सृष्ट्यासहं साधुभिः।
योग्यं योगविचारितं युगधरं योग्याननं योगिनं
वन्देऽहं सकलं कलङ्करहितं सत्सेवितं भैरवम्॥ ८॥
भैरवाष्टकमिदं पुण्यं प्रातःकाले पठेन्नरः। दुःस्वप्ननाशनं तस्य वाञ्छितार्थफलं भवेत्॥ ९॥
राजद्वारे विवाहे च सङ्ग्रामे सङ्कटे तथा। राज्ञा क्रुद्धेन चाऽऽज्ञप्ते शत्रुबन्धगते तथा॥ १०॥
दारिद्र्यदुःखनाशाय पठितव्यं समाहितैः। न तेषां जायते किञ्चिद् दुर्लभं भुवि वाञ्छितम्॥ ११॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे अवन्तीखण्डे सनत्कुमारकथितं कालभैरवाष्टकं सम्पूर्णम्॥

श्रीमद्भगवद्गीताका कर्मयोग

(श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)

कर्मयोगमें दो शब्द हैं—कर्म एवं योग। अब देखना है कि कर्म क्या है, योग क्या है तथा कर्मयोग क्या है। कर्म और क्रियामें भेद है। हम चलते हैं, काम करते हैं—ये सब हमारे कर्म हैं, लेकिन क्रिया कब होगी, जब कर्म तो होता है, लेकिन हम उसके कर्ता नहीं होते। यह बड़ा अजीब-सा लगता है कि हम कर्म करके भी उसके कर्ता नहीं। आप देखें आपका श्वास चलता है, आपकी पलकें गिरती-उठती हैं, आपके शरीरमें खूनका संचार होता है। क्या इन तीनों कर्मोंके हम कर्ता हैं, निश्चय ही हम नहीं हैं, फिर भी वे कर्म होते हैं अर्थात् ये सब हमारी स्वाभाविक क्रियाएँ हैं। अर्थात् जिस कर्मके हम कर्ता नहीं रहेंगे फिर भी हो रहा है तो वे कर्म हमारी क्रिया हो जायगी। इसी प्रकार जब क्रियामें कर्तापनका बोध नहीं हुआ तो वह कर्म हो जायगा। अब हम योगकी व्याख्या करेंगे।

महर्षि पतंजलिने योगके बारेमें कहा—'**योगः चित्तवृत्तिनिरोधः**' अर्थात् चित्तकी वृत्तियोंका निरोध अर्थात् उन्हें वशमें करना ही योग है, गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं 'जब हम कुशलतापूर्वक कर्म करते हैं तो योग सिद्ध होता है, **योगः कर्मसु कौशलम्**', अन्यत्र कहते हैं—'**समत्वं योग उच्यते।**' '**समत्वं योग उच्यते**' का अर्थ हुआ आसक्तिको त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर कर्तव्य-कर्मोंको करना, यह समत्व ही योग कहलाता है।

'**योगः कर्मसु कौशलम्**' में यह दिखलाया गया है कि कर्म स्वाभाविक ही मनुष्यको बन्धनमें डालनेवाले होते हैं और बिना कर्म किये कोई मनुष्य रह नहीं सकता, ऐसी परिस्थितिमें कर्मोंके प्रभावसे छूटनेकी सबसे अच्छी युक्ति समत्व योग है। इसलिये समत्व योग अपनाते हुए कर्म करना ही कर्मोंमें कुशलता है।

इस प्रकार हमने कर्म एवं योगकी व्याख्या अलग-अलग कर दी। अब हमें देखना है कि गीताका कर्मयोग क्या है। कर्म कर्मयोग तब होता है, जब हम बिना फलकी आकांक्षाके कर्म करते हैं।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥

अर्थात् हे अर्जुन! तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो। प्रायः लोगोंकी कर्ममें प्रवृत्ति फलके लिये ही होती है। अगर फलका त्याग कर देगा तो ऐसा न हो कि कर्म ही न करे। इसका और स्पष्टीकरण करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'हे धनंजय! तू आसक्तिको त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर योगमें स्थित होकर कर्मोंको कर। ऐसा समत्व भाव ही योग कहलाता है। इस प्रकार कर्मफलके त्यागसे भी आसक्ति, स्पृहा, वासना, ममताका त्याग समझ लेना चाहिये। जो पुरुष समस्त कर्मों और उसके फलमें आसक्तिका सर्वथा त्याग करके संसारके आश्रयसे रहित हो गया है और परमात्मामें नित्य तृप्त है, वह कर्मोंमें भलीभाँति बरतता हुआ भी वास्तवमें कुछ भी नहीं करता।

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः॥

पुनः भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥

जो पुरुष कर्मफलका आश्रय न लेकर करनेयोग्य कर्म करता है, वह संन्यासी तथा योगी है और केवल अग्निका त्याग करनेवाला तथा क्रियाओंका त्याग करनेवाला योगी नहीं है। अतएव वर्ण और आश्रमके अनुसार शास्त्रविहित कर्मोंमें फल और आसक्तिका भी त्याग करता है, उसीको कर्मयोगी कहते हैं। इसको और अधिक विस्तार देते हुए श्रीभगवान् कहते हैं—

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्॥

जो अकुशल कर्मसे द्वेष नहीं करता और कुशल कर्ममें आसक्त नहीं होता, जो आदमी कठिन कामसे कतराता नहीं और पसन्दीदा काममें फँसता नहीं, नेकनीयती रखता है, ऐसा आदमी बुद्धिमान् और त्यागी है। वास्तवमें कर्मोंकी क्रिया मनुष्यको नहीं बाँधती। फलकी इच्छा और आसक्तिसे ही उसका बन्धन होता है। फल और आसक्ति न हो तो कर्म मनुष्यको बाँध नहीं सकता।

कर्मबन्धन एवं कर्मोंकी शृंखला इतनी जटिल है कि इनसे पार पाना कठिन है। इस संसारमें अगर जीव आया है तो वह कर्म करेगा, ऐसा सम्भव ही नहीं है कि उससे कर्म न हो। इस तरह जो भी कर्म होगा, उसके साथ पाप या पुण्योंकी शृंखला जुड़ी होगी और समयानुसार उसका फल भी मिलेगा। इस शृंखलासे कैसे बाहर निकला जाय, कैसे मुक्ति पायी जाय—इसपर ऋषि-मुनियोंने अनेक तरहसे चिन्तन-मनन करके अनेकों समाधान दिये हैं, लेकिन श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने सम्भवतया पहली बार कर्मयोगकी इतनी सुन्दर, इतनी व्यापक व्याख्या की है, जो अन्यत्र किसी शास्त्रमें प्रयत्न करनेपर भी देखनेको नहीं मिलती।

कर्म हमें बाँधता है, कर्मकी अविराम शृंखला है, यह सर्वविदित है। जो कर्म हम करते हैं, उनका परिणाम भोगनेके लिये हमें विवश होना पड़ता है। काल हमारे सामने परिणामोंको रखता है, परिणाम शुभ हों या अशुभ हों, लेकिन हमें उन्हें भोगनेके लिये विवश होना पड़ता है। एक कर्म और फिर उसका परिणाम, फिर दूसरा कर्म और उसका परिणाम, इस तरह कर्मोंकी यह शृंखला जन्म-जन्मान्तरोंतक जारी रहती है, फिर ऐसा क्या हो कि कर्मबन्धनसे हमारी मुक्ति सम्भव हो जाय।

भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें इसका उपाय बताते हैं—कर्मयोग एवं कर्मयोगी-जैसा जीवन। गीतामें '**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्**' (२। ४०)—ऐसा कहते हुए वे व्याख्या करते हैं कि थोड़ा-सा भी इस धर्ममार्गका आचरण हमें जीवन-मरणके महान् भयसे त्राण दे देता है। श्रीकृष्ण यह उपदेश देते हैं कि शरीर है तो कर्म होंगे ही, लेकिन कर्मोंको इस ढंगसे किया जाय, कि कर्म करते हुए भी हम कर्मबन्धनमें न बँधें, यही कर्मयोग है।

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कर्मयोग करनेके लिये कई तरहके दृष्टिकोण दिये हैं। इनमें पहला है—आसक्तिका त्याग। **संगोऽस्त्वकर्मणि,** यानी कर्ममें हमारी आसक्ति नहीं होगी तो कर्म हमें नहीं बाँधेगा। श्रीरामकृष्ण परमहंस कहा करते थे—हाथोंसे कटहल काटना है तो सरसोंका तेल लगाकर काटो। तेल लगाकर काटोगे तो काटते समय हाथोंमें चिपकेगा नहीं, अन्यथा बिना तेलके यह चिपक जायगा। अनासक्तिरूपी तेलसे भी कर्म चिपकेगा नहीं, इसलिये आसक्तिका त्याग करो।

कर्मयोगका दूसरा आयाम है—राग-द्वेषका त्याग। राग-द्वेषको क्षीण करके जो कर्म किया जायगा, वह कर्मयोग है। कर्मयोगका तीसरा आयाम है—कर्तापनका त्याग। क्रियाका परिणाम नहीं होता, कर्मका परिणाम होता है। कर्तापनका त्याग ही हमें कर्मयोगी बनाता है। कर्मयोगका चौथा आयाम है—समत्व। गीतामें योगको परिभाषित करते हुए कहा गया है—**समत्वं योग उच्यते।** अर्थात् समता ही योग है। इस तरह समतामें स्थित होकर जो कर्म किये जाते हैं, वे कर्मयोग हैं और वे बन्धनका कारण नहीं बन पाते। कर्मयोगका पाँचवाँ आयाम है—**कर्मसु कौशलम्,** यानी कुशलतापूर्वक कर्मका आचरण। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**योगः कर्मसु कौशलम्,** कर्मको कुशलतापूर्वक करना योग है। इसलिये कर्ममें कुशलता लाना हमें सीखना चाहिये। कर्म तो हम करें, लेकिन बँधें नहीं। यह जो कर्मकी कुशलता है, इसके द्वारा कर्म करते हुए हम मुक्त रहते हैं—**मुक्तसंगः समाचर।** सम आचरण करते हुए, असंग हो करके, अनासक्त हो करके कर्म करें, यही कर्ममें कुशलता है, कर्मयोग है।

अतः जीवनका ध्येय यह होना चाहिये कि मेरा कर्म ही कर्मयोग हो जाय अर्थात् बिना फलकी आकांक्षाके कर्म करना। वस्तुतः फल मिलना तो निश्चित है ही और जब फल मिलना निश्चित है ही, तो उसकी आकांक्षा क्यों की जाय?

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❁ आज इस युगमें भी सन्तोंकी महिमा है, सन्तोंसे भारत भारत है। पशु-पक्षियोंमें भी सन्त होते हैं। पूर्वजन्मके प्रभाववश उनमें शान्ति एवं सन्तोष रहता है। कहीं एक स्थानपर भागवतकी कथा आरम्भ हुई, एक सर्प आया, लोग डरे, पण्डितजीने निर्भय होकर बैठनेको कहा। सात दिनतक नित्य चौकीके नीचे बैठकर सर्पने कथा सुनी, कथा समाप्त हुई, साँप मर गया। अनुमानसे जाना गया कि वह पूर्वजन्मका सन्त था, क्रोधावेशमें शरीर त्यागनेसे सर्पयोनि मिली, पर भजनका प्रभाव था, अतः अन्तमें सद्गति पायी। पण्डितजीने कहा—'एक बन्दर था, वह निडर होकर मेरी गोदीमें बैठता, छेड़नेपर भी किसीको काटता नहीं था। गिरिराजजीकी तलहटीमें उसने शरीर छोड़ा। साँप और बन्दर अपनी मौत मरते नहीं देखे जाते हैं। अन्तमें वायुमय शरीर होनेसे आकाशमें उड़ जाते हैं, पर दुर्घटना या किसीके द्वारा मारे जानेपर उन साँप-बन्दरोंके मृतक शरीर मिलते हैं। वृद्ध होकर मरते नहीं दीखते हैं, पर उक्त साँप और बन्दरने शरीर त्यागा, अतः विलक्षण जीव थे।

❁ सन्त वे हैं, जिनमें अहंकार, दम्भ, क्रोध, लोभ आदि नहीं है। जो अपनी पूजा नहीं चाहते, जिनका आचरण पवित्र है, ऐसे सन्तोंसे वर्तमानमें सम्पर्क, सम्बन्ध, सत्संग करना चाहिये। यदि वे भगवद् धाम चले गये हैं, तो उनका स्मरण करके उन्हें नमस्कार करना चाहिये। इससे मनमें शान्ति होती है। प्रभुकी ओर झुकाव होता है।

❁ सत्संगका लाभ मिलता है तो मनमें धीरे-धीरे शान्ति आती है, अन्यथा प्रत्येक प्राणी तन, मन, धन और जनसे दुखी दिखायी पड़ता है। संसारके सारे कार्य किसीके अनुकूल नहीं होते हैं। एक-न-एक प्रतिकूलता रहती है। अपने इष्टदेवमें दृढ़ विश्वास रखनेवाला जो शरणमें है और जो सन्मुख है, वही निश्चिन्त और सुखी है। सत्य, दया, क्षमा, अस्तेय (चोरी न करना) आदि धर्म सभी वर्णोंके धर्म हैं, अतः उक्त कर्तव्योंका पालन करना मानव धर्म है। जो दूसरोंके व्यवहारसे परेशान नहीं होते और अपने व्यवहारसे किसीको परेशान नहीं करते हैं, वे ही सन्त हैं। तन, मन, धनसे उपकार करनेवाले गृहस्थजन महान् हैं। मनकी शुद्धि और लोगोंके साथ व्यवहार शुद्ध होनेसे लोक-परलोकमें पूर्ण निर्भयता प्राप्त होती है। सन्तोंके ऐसे स्वभाव होते हैं।

❁ जीव अपने कर्मोंके अधीन सुख-दुःखका भोग करता है। यह सामान्य नियम है। विशेष शरणागत भक्त प्रभुकृपाके अधीन रहते हैं। प्रभुकी इच्छामें सन्तुष्ट रहते हैं। प्रभु जैसे रखें, उसी प्रकार रहनेमें सुखी रहते हैं। संसारी सम्पत्तिके संग्रहमें अति प्रयास नहीं करते हैं, जो कुछ प्रभुकृपासे प्राप्त हो जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहते हैं। शरीरमें कोई कष्ट आ जाय तो सुखपूर्वक उसे सहन करते हैं। ऐसे सन्त लोकमें अपनी ख्याति नहीं चाहते हैं। लोकमान्यता अग्निके समान है, जो तपस्यारूपी वनको जला देती है। बिना चाहे प्रभु-इच्छासे जो सम्मान-अपमान मिलता है, उससे विश्वका कल्याण करते हैं। ऐसे सन्त वाणीसे उपदेश न भी दें तो उनका आचरण उपदेश बन जाता है। उनका शरीर जबतक रहता है, वायुमण्डल शुद्ध होता रहता है, शरीर न रहनेपर भी प्रजामें उनकी चर्चा होती रहती है, उसे सुनकर लोग लाभान्वित होते हैं।

❁ भगवान्का जैसा स्वभाव होता है, वैसा ही स्वभाव भगवान्के भक्तका हो जाता है। भगवान्का चिन्तन करते-करते हृदयमें भगवान् विराज जाते हैं। तब भगवान्केसे गुण और भगवान्का सामर्थ्य भक्तमें आ जाता है। भगवान् और भक्त दोनों एकरूप हो जाते हैं। किसी भी जीवका आदर भगवान्की भक्ति है। किसी भी जीवका अपमान भगवान्का अपमान है। इसलिये जीवोंपर दया, भगवान्के नामोंमें प्रेम और वैष्णवोंकी सेवा, उनके साथ सत्संग करना ही वैष्णवोंका सर्वश्रेष्ठ धर्म है। वर्ण और आश्रमोंके धर्म इसीमें आ जाते हैं। घरके हों या बाहरके हों—सबके प्रति सद्भाव बनाये रखना चाहिये। इससे अपने मनमें सदा शान्ति बनी रहेगी। सभीका कल्याण हो, सभी सुखी-सम्पन्न हों।

['परमार्थके पत्र-पुष्प' से साभार]

जीव क्या है और माया क्या है ?

(श्रीरणविजयसिंहजी)

जीव और मायाके बारेमें श्रीरामचरितमानसके अरण्यकाण्डमें एक प्रसंग आया है कि जब भगवान् श्रीरामजी, लक्ष्मणजी एवं सीताजीके साथ चौदह वर्षके वनवासके लिये दण्डकारण्यमें आये तो वहाँ उनकी पिताके मित्र गृध्रराज जटायुसे भेंट हुई। उनके परामर्शसे प्रभु पर्णकुटी बनाकर वहीं गोदावरीके किनारे रहने लगे। तब एक दिनकी बात है, प्रभु श्रीराम सुखसे बैठे थे। उस समय लक्ष्मणजीने उनसे माया और जीवके विषयमें एक सच्चे जिज्ञासुकी भाँति छलहीन प्रश्न किया—

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना॥
ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥

(रा०च०मा० ३।१४।५, ३।१४)

लक्ष्मणजीने प्रेमसे पूछा कि—हे प्रभो! जीव क्या है? माया क्या है? प्रभु श्रीरामजीने समझाकर कहा कि—हे तात! मैं थोड़ेमें ही समझाकर कहे देता हूँ, तुम मन, चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो।

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाइ। सो सब माया जानेहु भाई॥

(रा०च०मा० ३।१५।२-३)

इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर जहाँतक मन जाता है, वह सब माया है। जीवको मायाने ऐसा फँसा रखा है यानी जीवको बन्धक बना रखा है और जीवके साथ ग्रन्थि डाल रखी है, जो बहुत ही मुश्किलसे खुलेगी और तब जीव स्वतन्त्र हो पायेगा और इसी बन्धनकी वजहसे जीव जन्म-मरणसे छुटकारा नहीं पाता।

यह माया प्रभुजीकी दासी है और वे जैसे नचाते हैं, वैसे ही यह नाचती है। मायाको जिसने पकड़ लिया या मायाने जिसे पकड़ लिया, उसे न वह व्यक्ति / जीव छोड़ पाता है न ही माया ही छोड़ पाती है। यह जीव मायाके वशीभूत हो गया है, जैसे बन्दर घड़ेमें चना देखकर उसे लेनेके लिये उसमें अपना हाथ डाल देता है और मुट्ठी भर लेता है, पर जब वह मुट्ठी बाहर निकालना चाहता है तो वह मुट्ठी नहीं निकलती है; क्योंकि वह मुट्ठी घड़ेमें फँस गयी है यानी वह चनेकी मायामें फँस गया है। जीव जोकि ईश्वरका अंश है। उसके विषयमें श्रीरामचरितमानसमें आया है कि—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

गीतामें श्रीभगवान्‌के मुखारविन्दसे कहा गया है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

(गीता १५।७)

आत्मा परमात्माका अंश है। परंतु प्रकृतिके कार्य शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण, मन आदिके साथ अपनी एकता मानकर वह जीव हो गया है। उसका वह जीवपना बनावटी है, वास्तविक नहीं। प्रभुजी जीवके साथ आत्मीयता रखते हैं; क्योंकि जीवको अपना ही अंश मानते हैं। वे कहते हैं कि जीव मेरा ही अंश है, इसमें प्रकृतिका थोड़ा भी अंश नहीं है, जैसे सिंहका बच्चा भेड़ोंमें मिलकर अपनेको भेड़ मान ले, वैसे जीव शरीर आदिसे मिलकर अपने चेतनरूपको भूल जाता है। यह जीव या परमात्मा बदलते नहीं हैं, पर यह शरीर बदलता रहता है। बचपनमें कुछ और, जवानीमें कुछ और, बुढ़ापेमें कुछ और, पर जीव ज्यों-का-त्यों रहता है। अतः साधकको कभी भी यह नहीं सोचना चाहिये कि जीव भी बदलता है, अपनेको प्रभुजीका मानकर प्रभुजीके चरणोंमें लगे रहना चाहिये।

यह जीव सदा ही भगवान्‌का है यानी 'सनातन' भगवान्‌ने न तो जीवका त्याग ही किया, न कभी जीवसे विमुख ही हुए। जीव कहीं भी क्यों न हो, नरकमें अथवा स्वर्गमें, मनुष्ययोनिमें अथवा पशुयोनिमें, प्रभुजी उसे अपना ही अंश मानते हैं। मनुष्य चाहे किसी भी स्थितिमें क्यों न हो, भगवान् उसे वहाँ स्थिर नहीं रहने देते, उसे अपनी ओर खींचते ही रहते हैं; क्योंकि मनुष्य और जीव ईश्वरका अंश है।

जीव जितना ही नाशवान् पदार्थोंको महत्त्व देता है, उतना ही वह पतनकी तरफ जाता है और जितना ही अविनाशी प्रभुजीको महत्त्व देता है, वह उतना ही ऊँचा उठता है; क्योंकि जीव प्रभुजीका अंश है।

विश्वासी भक्त

(श्रीयुत पं० श्रीनाथजी दुबे)

'भगवान् जो कुछ करते हैं, अच्छा ही करते हैं'—

परम पावन नर्मदा-तट-निवासी क्षत्रिय-पुत्र गिरिवरके ये वचन सुनकर गाँववालोंको बड़ी चिढ़ होती, कहते—'माता-पिता जीवित हैं। गौरी-जैसी दक्ष गृहिणी है। ऊदा-जैसे योग्य पुत्रके साथ सुविधा-सम्पन्न घरमें ही यह बात निकलती है। आपत्ति आये, तब विदित हो जाय कि भगवान् सब कल्याण करते हैं या नहीं।'

और यह सत्य अस्वीकार भी कैसे किया जाय! जटिलतम परिस्थितियों एवं भयानक विपदाओंमें भी करुणामूर्ति प्रभुकी अनन्त करुणापर सुदृढ़ विश्वास हो, मन तनिक भी विचलित एवं व्यथित न हो—यही तो प्रभुका विश्वास है। किंतु गिरिवरकी सचमुच भगवच्चरणारविन्दमें अद्भुत प्रीति एवं अनुपम निष्ठा थी। भगवद्विश्वास उनमें कूट-कूटकर भरा था—'करुणामय प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलमय है। वे जो कुछ कहते हैं, शुभ और मंगलके लिये ही। मंगलमूर्ति दयाधाम अमंगल और अकल्याण कर ही कैसे सकते हैं?'

सहसा माता-पिता चल बसे। गिरिवर केवल इस कारण दुखी हुए कि अब माता-पिताकी सेवासे उन्हें वंचित होना पड़ा। मन-ही-मन व्यथित होकर भी उन्होंने कहा—'मंगलमूर्ति प्रभु सदा मंगल ही करते हैं।'

कुछ ही दिन बीते, नर्मदामें स्नान करते समय ऊदाको मगरने पकड़ा और वह उसे जलमें ले गया। बालक ऊदा श्रीभगवान्‌को पुकारता रहा, पर कुछ न हो सका। अदृश्य हो गया वह।

करुण-क्रन्दन करती गौरी घर पहुँची। गिरिवर आराध्यकी पूजासे उठे ही थे। एकमात्र पुत्र ऊदाकी जलसमाधिका वृत्तान्त सुनते ही अभ्यासवश मुँहसे निकल गया—'भगवान् जो कुछ करते हैं, अच्छा ही करते हैं!'

फिर गिरिवरने अपनी धर्मपत्नीको समझाया—'ऊदाने सदा श्रीभगवान्‌की पूजामें सहायता की। वह प्रतिदिन कीर्तन करता। मगरके पकड़नेपर भी उसने भगवान्‌को पुकारा, अतएव वह निश्चय ही प्रभुके अक्षय सुख-शान्ति-निकेतनमें गया होगा, पर यह भी निश्चित नहीं कि उसकी जीवन-लीला समाप्त हो ही गयी। विश्वास करो, दयामय भगवान् सब कल्याण ही करेंगे।'

माता-पिता एवं पुत्रके अभावमें गिरिवरने खेती बँटाईपर दे दी। उससे प्राप्त अन्नसे दम्पतीका जीवन-निर्वाह हो जाता। दोनों भजन, पूजन एवं कीर्तन-स्मरणमें ही दिन व्यतीत करते। इस प्रकार गिरिवर और गौरी दोनों प्रसन्न रहने लगे, किंतु गौरी पुत्र-स्मृतिसे कभी-कभी व्याकुल हो जाती थी।

* * *

उस प्रदेशके सन्तानहीन नरेश चन्द्रसेनकी प्राणप्रिय पत्नीका परलोकवास हो गया था। विरक्त होकर वे संन्यास लेनेका विचार कर ही रहे थे कि उनके पिताके सिद्धयोगी गुरुने उनके समीप आकर कहा—'तुम एक अनुष्ठान करो। उससे तुम्हें एक सुयोग्य पुत्रकी प्राप्ति होगी। राजतिलकके क्षणतक उसे अपने माता-पिताकी स्मृति नहीं रहेगी। तुम उसे समुचित शिक्षा प्रदानकर राज्य-पदपर अभिषिक्त कर देना। तदनन्तर तुम्हारे संन्यास ग्रहण करनेमें आपत्ति नहीं।'

राजा चन्द्रसेनने गुरुजीके साथ अरण्यमें जाकर अनुष्ठान किया। अनुष्ठान पूर्ण होनेपर वे नावमें बैठे हुए नर्मदाजीमें मछलियोंको अन्न खिला रहे थे, उसी समय उन्होंने बहते हुए एक बालकको देखा। राजाने प्रयत्न करके तुरंत उसे अपनी नावपर चढ़ा लिया।

बालकके पैरमें जल-जन्तुओंके काटनेसे घाव हो गया था। राजाने उसकी चिकित्साकी सुव्यवस्था की। इक्कीस दिन मूर्च्छित रहनेके अनन्तर बालकको होश आया। उसका घाव भी अच्छा हो गया।

वह बालक था, गिरिवर-पुत्र ऊदा। ऊदाको पकड़कर मगरने जब डुबकी लगायी, तो दूसरे मगरने उसपर आक्रमण कर दिया। ऊदा मगरके मुँहसे छूटकर बह चला था।

ऊदा अपने माता-पिताको भूल गया था। राजा चन्द्रसेनने उसका नामकरण किया—उदयराज। राजाने

उसे समझाया—'तुम मेरे पुत्र हो और तुम्हारी माता कमलादेवीका स्वर्गवास हो चुका है।'

राजाने उदयराजकी शिक्षाकी व्यवस्था की। अत्यन्त प्रतिभाशाली उदयराज राज्योचित योग्यतामें पारंगत हो गये। विजयनगर-नरेशकी रूप-गुण-सम्पन्ना पुत्रीसे उनका विवाह हो गया। महाराज चन्द्रसेन उदयराजको राज्य-पदपर आसीनकर संन्यास ग्रहणकर तपश्चरणार्थ वनमें चले गये।

एक बार अवर्षणके कारण भयानक अकाल पड़ा। अन्न और तृणके बिना मनुष्य और पशु काल-कलवित होने लगे। घरकी सामग्री बेच देनेपर भी जब निर्वाहका कोई मार्ग शेष नहीं रहा, तब गिरिवर श्रीठाकुरजीकी पूजाके दायित्वके साथ अपनी सहधर्मिणी गौरीकी बहुमूल्य नथ पुरोहितजीको देकर स्वयं पत्नीसहित भगवत्स्मरण करते हुए घरसे निकल पड़े।

'भगवान् जो कुछ करते हैं, कल्याण ही करते हैं'—अत्यन्त दारुण स्थितिमें भी अद्भुत विश्वासी भक्त गिरिवरके मुखसे तुरन्त निकला। गाँवके बाहर वे सपत्नीक वृक्षके नीचे सोये थे कि पत्नीको काले नागने डँस लिया। वह विषसे छटपटाती हुई भगवत्स्मरण करती रही; अन्तमें उसका श्वास रुक गया। गिरिवर रातभर पत्नीके शवके समीप बैठे भगवन्नाम-कीर्तन करते रहे और प्रात:काल शवको कन्धेपर उठाकर नर्मदाजीमें प्रवाहितकर आगे बढ़ चले—सर्वथा निरुद्विग्न, सर्वथा स्थिर एवं शान्त।

अब गिरिवर अकेले थे—सर्वथा एकाकी। वैराग्य तीव्रतम हो उठा। वे प्रभु-दर्शनके लिये व्याकुल होने लगे। अब तो उन्हें अपने तन-मनकी भी सुधि नहीं थी। वृक्षके नीचे बैठे-बैठे करुण-क्रन्दन करने लगे। प्रभुके लिये रोते-छटपटाते वे मूर्च्छित हो गये।

लीलाधारी द्रवित हुए। नर्मदाके स्थानपर कालिन्दी प्रकट हो गयी। वन दिव्य वृन्दावनमें परिणत हो गया। सम्मुख कदम्बके नीचे पीताम्बर परिवेष्ठित मयूरपिच्छधारी त्रिभंग-श्यामसुन्दर अधरोंपर वंशी रखे अमृत-रसकी वर्षा कर रहे थे। जड़-चेतन, सभी आनन्दमग्न थे। त्रिभुवनसुन्दरकी अलौकिक रूप-माधुरीके दर्शनकर गिरिवर जड़-से हो गये। उनके हृदयमें आनन्दाम्बुधि लहरें ले रहा था। वाणी अवरुद्ध थी।

'तू मुझे अत्यधिक प्रिय है।' अमृतमयी वाणीमें मनमोहनने कहा—'तेरे बिना मुझे अच्छा नहीं लगता, इसी कारण यहाँ दिव्य वृन्दावन प्रकट हुआ है। अब तू मेरे धामको चल। गौरी अभी जीवित है। उसके मनमें पुत्रके प्रति ममता शेष है। अतएव वह अपने ऊदासे मिलकर मेरे धाम आयेगी।'

वनमालीके इतना कहते ही गिरिवरका शरीर ज्योतिर्मय हो उठा। सहसा शरीरसे ज्योति-पुंज निकलकर श्रीश्यामसुन्दरके चरणोंपर गिर पड़ा। श्रीश्यामसुन्दरने उसे वक्षसे लगाया और दिव्य वृन्दावनके साथ वे अन्तर्धान हो गये। अरण्यमें गिरिवरके शरीरकी रक्षाका दायित्व वनदेवीपर रहा।

गिरिवर-पत्नी गौरीका शव नर्मदाकी धारामें बहता चला जा रहा था। वह आठ दिनतक बहता ही रहा। भगवान्‌की दयासे उसे किसी पक्षी या जल-जन्तुने स्पर्शतक नहीं किया। आठवें दिन स्नान करते हुए एक महात्माने शवमें जीवनका अनुमानकर उसे पकड़ लिया। वे उसे बाहर ले आये। अभिमन्त्रित जलके छींटेसे गौरीकी चेतना लौट आयी। उन महात्माने उसे सिद्ध फल खानेको दिया, तो उसमें शक्तिका संचार तो हुआ ही, उसके संस्कारोंका बोझ भी उतर गया।

महात्मा दिव्यदर्शी थे। उन्होंने गौरीसे उसके पतिके परमधाम-गमनकी बात बतायी। गौरीने कहा—'मेरे पूज्य पतिदेव सदा, सर्वथा ठीक कहते थे कि भगवान् जो कुछ करते हैं, कल्याण ही करते हैं। यदि मैं उनके साथ होती, तो उन्हें परमप्रभुकी प्राप्ति सम्भव नहीं थी।'

महात्माके बताये स्थानपर गौरी अपने पतिके निष्प्राण शरीरके समीप पहुँची। वहाँ चार ब्रह्मचारी भी उपस्थित हो गये। उन्हें जलांजलि दी। तदुपरान्त वह गैरिक वस्त्र धारणकर, हाथमें इकतारा ले, आनन्दमग्न हो, भगवन्नाम-कीर्तन करती हुई यत्र-तत्र भ्रमण करने लगी। इस प्रकार वह असंगभावसे एक नगरमें प्रविष्ट हुई। वहाँ अत्यधिक उल्लाससे उत्सव मनाया जा रहा था।

वह नगर महाराज चन्द्रसेनका था। वे कल ही उदयराजका राज्याभिषेककर वनमें चले गये थे। उन्होंने उदयराजको उसके जलमें मिलनेकी सत्य घटना भी सुना

दी थी। उसी रात्रि उदयराजने स्वप्नमें अपनी माता गौरीको संन्यासियोंके वेषमें देखा था। अतएव नगरमें सर्वत्र घोषणा कर दी गयी थी कि 'किसी संन्यासिनीके नगरमें प्रविष्ट होते ही नरेशको तुरंत सूचना दी जाय।'

समाचार मिलते ही उदयराज दौड़े। माताको देखते ही उसके चरणोंपर गिर पड़े—'माँ! माँ!!' उदयराजके आँसुओंसे गौरीके चरण धुल गये।

गौरीने पुत्रको उठाकर वक्षसे सटा लिया—'ऊदा! मेरा प्राणप्रिय ऊदा!!'

गौरी राज-सदन पहुँची। उदयराजने अपना वृत्तान्त सुनाया। माताने उससे पतिकी भगवत्प्राप्तिकी बात कही। उदयराजने प्रसन्नमनसे कहा—'पिताजी सच कहते थे कि 'प्रभु सदा मंगल ही करते हैं।'

पुत्रके मिल जानेपर गौरीकी आसक्ति नष्ट हो गयी। अत्यधिक विरक्तिके कारण वह भजनके लिये अरण्यमें जाना चाहती थी, किंतु पुत्रके आग्रहसे नगरके बाहर एक कुटियामें रहकर निरन्तर भजन करने लगी। गौरीकी भगवत्प्रीति पराकाष्ठापर पहुँची और दयामय प्रभुने उसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया। प्रभुका दर्शन करते-करते ही उसने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

उदयराज भी सपत्नीक प्रभु-भजन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

बोध-कथा—

महापुरुषोंके प्रति उद्दण्डताका दुष्परिणाम

पाण्डवोंके वन चले जानेपर एक दिन महर्षि मैत्रेय धृतराष्ट्रकी राजसभामें आये। महर्षि मैत्रेयके पधारते ही धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके सहित उनके सेवा-सत्कारमें लग गये। कुशल-प्रश्नके पश्चात् मैत्रेयजीने कहा—'राजन्! मैं तीर्थयात्रा करते-करते कुरुजांगल देशमें गया था। वहाँ संयोगवश काम्यक वनमें धर्मराज युधिष्ठिरसे भेंट हो गयी। वे आजकल जटा और मृगछाला धारण किये तपोवनमें निवास कर रहे हैं। उनके दर्शनके लिये बड़े-बड़े ऋषि-मुनि आते हैं। धृतराष्ट्र! मैंने वहीं यह सुना कि तुम्हारे पुत्रोंने अज्ञानवश जुआ खेलकर उनके साथ अन्याय किया है। इसलिये वहाँसे मैं तुम्हारे पास आया हूँ; क्योंकि मैं तुमपर सदासे स्नेह और प्रेम रखता हूँ। राजन्! तुम्हारी सभामें तुम्हारे सामने जो अन्याय-कार्य हुआ है, उससे ऋषि-मुनियोंके समाजमें तुम्हारी बड़ी हेठी हुई है। अब सँभल जाओ।' इसके बाद दुर्योधनकी ओर मुँह फेरकर कहा—'बेटा दुर्योधन! मैं तुम्हारे हितकी बात कह रहा हूँ। तुम तनिक समझदारीसे काम लो। पाण्डवोंका, कुरुवंशियोंका, सारी प्रजाका और तुम्हारा भी हित तथा प्रिय इसीमें है कि तुम पाण्डवोंसे द्रोह मत करो। वे सब-के-सब वीर, योद्धा, बलवान्, सत्यप्रतिज्ञ, आत्माभिमानी और राक्षसोंके शत्रु हैं। उनके हाथों बड़े-बड़े राक्षसोंका नाश होनेवाला है और हिडिम्ब, बक, किर्मीर आदि राक्षसोंको उन्होंने मार भी डाला है। जिस समय रातमें वे यहाँसे जा रहे थे, किर्मीर-जैसे बलवान् राक्षसको भीमसेनने बात-की-बातमें मार डाला। बेटा! तुम मेरी बात मान लो। क्रोधके वश होकर अनर्थ मत करो।'

जिस समय महर्षि मैत्रेय इस प्रकार कह रहे थे, उस समय दुर्योधन मुसकराकर पैरसे जमीन कुरेदने और अपनी सूँड़के समान जाँघपर हाथसे ताल ठोंकने लगा। दुर्योधनकी यह उद्दण्डता देखकर मैत्रेयजीने उसको शाप दिया—'मूर्ख दुर्योधन! तू मेरा तिरस्कार करता है और मेरी बात नहीं मानता। ले तू इस अभिमानका फल चख। तेरे इस द्रोहके कारण कौरवों और पाण्डवोंमें घोर युद्ध होगा। उसमें भीमसेन गदाकी चोटसे तेरी जाँघ तोड़ डालेंगे।' महर्षि मैत्रेयके ऐसा कहनेपर धृतराष्ट्र उनके चरणोंपर गिरकर अनुनय-विनय करने लगे। उन्होंने कहा—'भगवन्! ऐसी कृपा कीजिये, जिससे यह शाप न लगे।' मैत्रेयजीने कहा—'राजन्! यदि तुम्हारा पुत्र पाण्डवोंसे मेल कर लेगा, तब तो मेरा शाप नहीं लगेगा, नहीं तो अवश्य लगेगा।' हुआ भी यही; भीमने अपने गदा-प्रहारसे दुर्योधनकी जंघा तोड़ डाली। इस प्रकार उसे महापुरुषोंके तिरस्कारका दण्ड भोगना पड़ा।

तीर्थ-दर्शन—

ग्वालियरका शनिधाम—शनिश्चरा

(श्रीगोपाल हरिजी दूबे)

मध्यप्रदेशके मुरेना जिलेमें बानमोर तथा रिठौरा कलाके बीच ऐंतीगाँवकी तलहटीमें शनिदेवका प्राचीन मन्दिर है। वर्तमानमें यह स्थान सड़कमार्ग तथा ग्वालियर-भिण्ड रेलवे मार्गसे जुड़ा हुआ है तथा शनिश्चरा नामसे रेलवे स्टेशन है। इसके अतिरिक्त आगरा-मुम्बई मार्गपर स्थित वानमोरसे भी सीधा पक्का मार्ग है। आवागमनके लिये शनिधामको बस, टेम्पो तथा ऑटो उपलब्ध रहते हैं।

एक समय था, जबकि यह क्षेत्र घने जंगलसे आच्छादित था और इसमें बाघ, रीछ, चीता, तेंदुआ आदि वन्य जीव बहुतायतसे पाये जाते थे। वनोंकी कटाई हो जानेसे ये वन्यजीव भी विलुप्त हो गये हैं। शनि मन्दिरका जीर्णोद्धार होकर जन-सुविधाएँ भी उपलब्ध हो गयी हैं। यह स्थान ग्वालियरसे केवल २२ किलोमीटर दूर है।

ऐतिहासिक कथानक—शनिश्चराधाममें स्थित शनिदेवका प्राचीन मन्दिर त्रेतायुगका बताया जाता है। एक कथाके अनुसार जब श्रीहनुमान्जी माता सीताका पता लगानेके लिये लंकामें गये, तब उनकी नजर रावणके बन्दीगृहमें उलटे लटके हुए शनिदेवपर पड़ी। हनुमान्जीने कई देवताओंको रावणके कारागारसे मुक्त कराया। अन्तमें जब शनिदेव बचे तो हनुमान्जीने जल्दबाजीमें वेगपूर्वक छुड़ाते हुए उन्हें लंकासे बाहर फेंका। शनिदेव तेजगतिसे आकर शनिधामके इस पहाड़से टकराये, जिससे उनके पैरमें हलकी-सी लचक भी आ गयी। शनिके स्पर्शसे यहाँकी विशाल शिला टूट गयी और इस पहाड़पर बिखर गयी, तबसे यहाँ शनिका स्थान माना जाता है।

शनिदेव-मन्दिरमें स्थित सूर्यदेवकी प्रतिमाकी स्थापना महाराजा विक्रमादित्यके द्वारा करायी गयी थी। उसके बाद निर्माण बदलते गये और मन्दिरका बाहरी नक्शा भी बदल गया, लेकिन प्रतिमा आज भी मूलस्वरूपमें है। पुराने इतिहास और अभिलेखोंके अनुसार छठवींसे नौवीं सदीतक इस मन्दिरपर कछवाह राजाओंका आधिपत्य रहा। उसके बाद चौदहवीं सदीतक तोमरोंने मन्दिरकी व्यवस्थाएँ देखीं। इस दौरान तिरसठ वर्षतक यहाँ मुस्लिम शासकोंका शासन रहा। उन्होंने मन्दिरके बाहरी हिस्सेको तोड़कर उसे अपनी शैलीमें निर्मित कराया। पन्द्रहवीं शताब्दीमें गोहदके जाट राजाओंने इसे अपने कब्जेमें लिया और सत्रहवीं शताब्दीमें सिन्धिया राज्य अस्तित्वमें आया और १८०६में सिन्धिया वंशद्वारा इस मन्दिरका निर्माण नये सिरेसे कराया गया। उसी स्वरूपमें मन्दिर आजतक विद्यमान रहा। वर्ष २००८-०९में मन्दिरके बाहरी भागका निर्माण हुआ।

पुरातत्त्वविशेषज्ञ रमाकान्त चतुर्वेदी शनिपर्वतपर नालंदाकालकी संस्कृतिके मिलनेकी बात भी स्वीकार करते हैं।

शनिश्चरा पर्वतकी परिक्रमा गिरिराजजीकी परिक्रमासे कहीं ज्यादा लम्बी है। गिरिराजजीकी परिक्रमा जहाँ सात कोसकी है, वहीं शनिश्चरा पर्वतकी परिक्रमा तेरह कोसकी बतायी जाती है। हालाँकि इससे श्रद्धालुओंकी निष्ठापर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे शनिदेवका आशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये ऊबड़-खाबड़ रास्तोंसे गुजरते हुए परिक्रमा पूरी करते हैं।

वर्ष १८१७ में शनिपर्वतकी शिला नगरके जिला सेठ दौलतरामने शनिप्रकोपसे बचनेके लिये ले जाकर शिरडीके समीप महाराष्ट्रके सिगनापुरमें स्थापित की। वहाँ यह शिला खुले आकाशमें विशाल चबूतरेपर स्थापित है।

शनिदेवके प्रमुख मन्दिर—प्रमुख शनिमन्दिर ग्वालियरसे २२ किलोमीटर दूर ऐंतीगाँवकी तलहटीमें स्थित है। इसके अतिरिक्त वृन्दावनके पास कोकिलावनमें, महाराष्ट्रके सिगनापुरमें, तामिलनाडुमें कराइकलके पास तिरुनल्लरुमें, दिल्लीके पास कर्नाटप्लेस इलाकेमें तथा महरौलीके पास असोत्रा-फतेहपुरमें हैं। मध्यप्रदेशके इन्दौर तथा उज्जैनमें प्राचीन शनिमन्दिर हैं। वैसे अब अनेक स्थानोंपर शनिदेवके मन्दिर भक्तोंद्वारा बनवाये गये हैं।

शनि सौरमण्डलमें बृहस्पतिसे दो लाख तथा सूर्यसे चौदह लाख योजन ऊपर नीले रंगमें स्थित हैं। हमारे नवग्रहोंमें शनिकी गति सबसे मन्द है। यह सत्ताईस वर्षमें अपना भ्रमण पूरा करते हैं। यह एक राशिमें तीस महीने

रहते हैं। यह जिस राशिमें रहते हैं, उसके पूर्व और आगामी राशिपर भी अपना प्रभाव डालते हैं। शनिदेवकी यह दशा साढ़े साती दशा कहलाती है।

शनिकी उत्पत्ति—शनिदेव सूर्यदेवके पुत्र हैं। धर्मग्रन्थोंके अनुसार सूर्यकी द्वितीय पत्नी छायाके गर्भसे शनिदेवका जन्म हुआ। शनिको श्याम वर्णका देखकर सूर्यने अपनी पत्नी छायापर आरोप लगाया कि शनि मेरा पुत्र नहीं है। तभीसे शनिदेव अपने पिता सूर्यसे शत्रुभाव रखते हैं। शनिदेवने अपनी तपस्याके द्वारा शिवजीको प्रसन्नकर अपने पिताकी भाँति शक्तिको प्राप्त किया। शिवजीने शनिको वरदान माँगनेके लिये कहा, तब शनिदेवने प्रार्थना की कि युगों-युगोंसे मेरी माता छायाकी पराजय होती रही है, उन्हें मेरे पिता सूर्यद्वारा बहुत ज्यादा अपमानित एवं प्रताड़ित किया गया है। अतः मेरी माताकी इच्छा है कि उनका पुत्र शनि अपने पितासे उनके अपमानका बदला ले और उनसे भी अधिक शक्तिशाली बने। तब भगवान् शंकरने वरदान देते हुए कहा कि नवग्रहोंमें तुम्हारा सर्वश्रेष्ठ स्थान रहेगा। मानव तो क्या, देवता भी तुम्हारे नामसे भयभीत रहेंगे। शनिदेवकी नौ पत्नियाँ हैं। शनि न्यायके देवता हैं। इनका वाहन गिद्ध है तथा रथ लोहेका बना होता है।

शनिदेवकी विशेषताएँ—(१) सूर्यपुत्र शनिदेव मृत्युलोकके न्यायाधीश हैं, जो अपना समय आनेपर जातकके अच्छे-बुरे कर्मोंके आधारपर कार्य करते हैं।

(२) शनिदेव न्यायाधीश हैं और न्याय हमेशा अप्रिय होता है। इसलिये वे क्रूर कहलाते हैं।

(३) काला रंग ही एक ऐसा रंग है, जिसपर दूसरा रंग नहीं चढ़ता है।

(४) शनिकी धातु लोहा है, जो सबसे भारी है।

ज्योतिषीय दृष्टिकोण—भारतीय ज्योतिषमें सौर-मण्डलकी बारह राशियोंमें मकर, कुम्भ राशि शनिग्रहके प्रभावक्षेत्रमें आती है अर्थात् शनिको दोनों राशियोंका स्वामित्व प्राप्त है। शनिग्रह एक राशिको साढ़े सात वर्षतक प्रभावित करता है।

नक्षत्रोंमें पुष्य, अनुराधा, उत्तरा भाद्रपदपर शनिका आधिपत्य है। यह तुला राशिके बीस अंशतक उच्चस्थ तथा मेष राशिके बीस अंशतक परम नीचस्थ माना जाता है। शनि ग्रह बुध तथा शुक्रसे मित्रता रखता है तथा बृहस्पतिसे समभाव (न मित्र न शत्रु) रखता है।

शनिग्रह लोहा, तेल, तिल, नीलम तथा कालेरंगकी वस्तुओंका अधिपति माना गया है। जन्म-कुण्डलीमें शनि ग्रह बली या उच्चस्थ होकर शुभभावमें विद्यमान हो तो लोकप्रियता, सार्वजनिक प्रसिद्धि, वाहन-सुख, गृहस्थ-सुखको बढ़ाता है। अशुभ शनि अतुलनीय शारीरिक एवं मानसिक संत्रास देता है।

शनिदेवकी कृपाप्राप्तिके उपाय—(१) सूर्योदयके पूर्व प्रति शनिवार पीपलवृक्षके नीचे एक लोटा जल चढ़ायें। अगरबत्ती-धूप जलाकर सरसों तेलका दीपक जलायें।

(२) सूर्योदयके पूर्व या सूर्यास्तके पश्चात् शनि-स्तोत्र या मन्त्रका पाठ करें।

(३) काली गायका पूजनकर गायको काले चनेके साथ गुड़ खिलायें।

(४) काले कुत्ते या कौवेको तेलमें तली हुई गुड़की मीठी रोटी दें।

(५) भिखारी, अपाहिज, कोढ़ी व्यक्तिको शनिवारके दिन काले वस्त्र, लोहेकी बनी दैनिक जीवनमें उपयोगी सामग्री दानमें दें।

(६) किसी प्रसिद्ध जाग्रत् शनिस्थलीमें जाकर शनिदेवका अभिषेक करें।

शनिस्तोत्र इस प्रकार है—

नीलद्युतिं शूलधरं किरीटिनं
गृध्रस्थितं त्रासकरं धनुर्धरम्।
चतुर्भुजं सूर्यसुतं प्रसन्नं
वन्दे सदाभीष्टकरं वरेण्यम्॥

विशेष मन्त्र—

नीलाञ्जनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम्।
छायामार्तण्डसम्भूतं तं नमामि शनैश्चरम्॥
सूर्यपुत्रो दीर्घदेहो विशालाक्षः शिवप्रियः।
मन्दचारः प्रसन्नात्मा पीडां हरतु मे शनिः॥
कोणस्थः पिंगलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रान्तको यमः।
सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलादेन संस्तुतः॥

॥ ॐ शं शनैश्चराय नमः॥

॥ ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनये नमः॥

सन्त-चरित—

भक्तकवि श्रीकृष्णदयार्णवजी

(श्री प्रा०ज०रा० कस्तुरे)

मध्यकालीन मराठी वाङ्मयमें कविवर कृष्णदयार्णवका नाम विशेष रूपसे प्रसिद्ध है। उनका निवास-स्थान महाराष्ट्र प्रदेशमें कहाड़के निकट कोपारूढ़ गाँवमें था। उन्होंने संवत् १७३१ वि० में वैशाख शुक्ल अक्षय तृतीयाको जन्म लिया था। उनकी बाल्यावस्थाका नाम नरहरी था। वे माध्यन्दिन शाखाके शुक्लयजुर्वेदीय ब्राह्मण थे। उनके पिताका नाम नारायण और माँका नाम बहिशबाई था। उनकी बाल्यावस्थामें ही उनके पिताका स्वर्गवास हो गया। उस समय समूचे महाराष्ट्रमें सम्राट् औरंगजेबकी मुगल सेनाने आतंक फैला रखा था। परिस्थितिवश नरहरीको अपना गाँव छोड़कर मराठवाड़ेके आँबाजोगाई नामक शहरमें आश्रय लेना पड़ा। वहाँ उनकी श्रीगोविन्द नामक एक सत्पुरुषसे भेंट हो गयी, जो 'आनन्द-सम्प्रदाय'के महात्मा थे। गुरु गोविन्दने नरहरीपर अनुग्रह किया और उन्हें उपदेश देकर कृतार्थ किया। उन्होंने नरहरीका नाम श्रीकृष्णदयार्णव रख दिया। गुरुने उन्हें गीता-भागवत, ज्ञानेश्वरी आदि ग्रन्थोंका पारायण करने तथा कोराल भिक्षापर निर्वाह करनेका उपदेश दिया। गुरुके उपदेशके अनुसार श्लोक गाते-गाते '**श्रीकृष्ण दयार्णव समर्थ**' उच्चारणकर मधुकरी माँगते थे। सदा 'जय-जय श्रीरघुवीर समर्थ' का उच्चारण करनेवाले रामदास स्वामी स्वयं भी 'समर्थ' नामसे प्रसिद्ध हुए। वैसे ही श्रीकृष्णदयार्णवकी जय-जयकार कहनेवाले नरहरी भी आगे चलकर इसी नामसे प्रसिद्ध हुए। गुरुके बताये हुए मार्गपर चलते-चलते कृष्णदयार्णवके आयुके ५० वर्ष बीत गये।

राजा हो या रंक, किसीका भी कर्मभोग टल नहीं सकता। ईश्वरोपासनामें अपना काल व्यतीत करनेवाले कृष्णदयार्णवको इसी आयुमें महारोगने ग्रस्त कर लिया। कुछ दिन औषधोपचार करनेमें व्यतीत हुए, परंतु रोग बढ़ता ही गया। अनुग्रह करनेवाले गुरु गोविन्द पहले ही चल बसे थे। अब तो बस—'**औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः**' की स्थिति आ गयी। मनमें एक ही विचार था। 'किस उपायसे यह भयानक रोग दूर हो?' अन्तमें सपनेमें गुरु गोविन्दने दर्शन देकर कहा—'इस रोगसे तो क्या भवरोगसे ही मुक्ति देनेकी शक्ति भगवत्कृपामें है। अतएव तू भगवन्नाम-गुण-संकीर्तन अनन्यरूपसे कर। भगवान्‌की असीम कृपासे तेरी व्याधि मिट जायगी।' वैसी ही बात एकनाथजीने भी स्वप्नमें दर्शन देकर कही—'मैंने श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धका विवेचन किया है। अब तू भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन करनेवाले दशम स्कन्धका विवेचन कर। भगवान्‌की कृपासे ही तुझे इस रोग तथा संसार-सागरसे भी मुक्ति मिलेगी।'

उन्होंने गुरुके वचनमें विश्वास रखकर ५४ वर्षकी आयुमें श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका मराठीमें सविस्तार विवेचन करनेका महान् कार्य प्रारम्भ किया। जिस आयुमें सर्वसाधारण मनुष्य अपने-अपने व्यवसायसे निवृत्त होनेकी इच्छा करता है, उसी आयुमें भगवान्‌की कृपापर पूरी श्रद्धा रखकर कृष्णदयार्णवने महान् कार्यका भार अपने कन्धेपर रख लिया। संवत् १७८४ में उन्होंने ग्रन्थका आरम्भ किया। उन्होंने श्रीधर स्वामीकी संस्कृत-टीकाके आधारपर 'हरिवरदा' नामसे दशम स्कन्धकी टीका ओवी (पद्य)-बद्ध की, जिसका पूर्वार्ध श्रावण कृष्ण ८, वि० संवत् १७९१में पूर्ण हुआ। अबतक उनके शरीरकी व्याधि पूर्णरूपेण निवृत्त हो गयी थी। महारोग-जैसे भयानक व्याधिपर भगवत्कृपारूपी औषधि सफल हुई। कृष्णदयार्णवकी आयु अब साठ सालकी हो चुकी थी। दशम स्कन्धके उत्तरार्धपर टीका लिखनेका कार्य शेष रह गया था। इस महान् कार्यका आरम्भ करें या न करें, इस विचारमें दो-तीन मास बीत गये। अन्तमें निश्चय हुआ कि भगवान्‌की कृपा हो तो शेष ग्रन्थ-रचना भी पूरी होगी ही। बड़ी आशाके साथ नीरोग शरीर और उत्साहित मनसे कृष्णदयार्णवने उत्तरार्ध लिखना प्रारम्भ किया। उत्तरार्धके ४१ अध्यायोंमेंसे ३७ अध्यायोंका विवेचन पूरा हुआ। ३८वें अध्यायके कुछ श्लोक भी पूरे हो गये। परंतु अखण्डरूपसे १३-१४ वर्षतक निरन्तर लेखन करनेसे कृष्णदयार्णवका शरीर पुनः शिथिल हो गया। उनकी आयु भी ६६ वर्षकी हो गयी थी। अब उनके सामने एकमात्र

चिन्ता यह थी कि मेरा भगवद्‌गुणानुवादका यह कार्य कहीं अधूरा तो न रह जायगा।

श्रीकृष्णदयार्णव स्वामीके अनेक शिष्य थे। उनमेंसे सोलह शिष्य प्रमुख माने जाते थे। इन सोलह शिष्योंमें भी उत्तमश्लोक नामक शिष्य पट्टशिष्य माना जाता था। अपने गुरुके ग्रन्थका लेखन वही करता था। उसने श्रीकृष्णदयार्णवजीको वचन दिया, 'गुरुजी! आप कोई चिन्ता न करें। आपका यह कार्य मैं पूर्ण करूँगा।' शिष्यके इस वचनसे कृष्णदयार्णवके मनको बड़ा आश्वासन मिला। उनकी चिन्ता मिट गयी। शान्तवृत्तिसे भगवच्चिन्तन करते-करते श्रीकृष्णदयार्णव स्वामी मार्गशीर्ष शुक्ल, वि० संवत् १७९७में पैठणमें समाधिस्थ हो गये।

अपने गुरुके परलोकवासके पश्चात् तीन वर्षतक लेखन करके उत्तमश्लोकने शेष अध्यायोंका विवेचन पूरा किया। ग्रन्थ पूरा हो गया। एक महान् संकल्प सत्य होकर सृष्टिमें आ गया। इस ग्रन्थकी ओवी (पद्य)-संख्या बयालिस हजार है। भगवान् श्रीकृष्णके सम्पूर्ण चरित्रका गुणानुवाद करनेवाला इतना विशाल दूसरा ग्रन्थ मराठी वाङ्मयमें कदाचित् प्राय: नहीं है। इस दृष्टिसे 'हरिवरदा' ग्रन्थ भगवत्कृपाका एक अमर प्रतीक है। इतना ही नहीं, कविवर श्रीकृष्णदयार्णवने भगवत्कृपा और अपने गुरु श्रीगोविन्दके चरण-सन्निष्ठाके फलस्वरूप 'दत्तजननोत्साह', 'विचारचन्द्रिका' और 'तन्मयानन्दबोध' आदि ग्रन्थोंकी भी रचनाकर अपना जीवन सफल किया था। वह महान् ग्रन्थ तो केवल भगवत्कृपाके बलसे ही पूरा हो सका।

प्रेरक-प्रसंग—

विलक्षण क्षमा

स्वामी उग्रानन्दजी बहुत अच्छे सन्त थे। आप बड़े सहिष्णु तथा सर्वत्र भगवद्‌बुद्धि रखनेवाले थे। एक बार आप उन्नाव जिलेके किसी ग्राममें पहुँचे। संध्या हो गयी थी। आप ब्रह्मानन्दकी मस्तीमें निमग्न एक पेड़के तले गुदड़ी बिछाकर लेट गये। रात्रिमें उसी गाँवमें किसी किसानके बैलको चोर चुराकर ले गये। गाँवमें थोड़ी देर बाद ही हल्ला मचा और सबने कहा कि 'चलो, बैलोंको ढूँढ़ें, कहीं चोर जाता हुआ मिल ही जायगा।' ऐसा विचार करके बहुतसे गाँववाले लाठी ले-लेकर बैलको ढूँढ़ने निकले। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वे उस जगहपर आये, जहाँ स्वामीजी पेड़के नीचे सो रहे थे। उनमेंसे एक आदमीको स्वामीजी दिखायी दिये। उसने सबको पास बुलाकर कहा कि 'लो, चोरका पता तो लग गया। देखो! यह जो पेड़के नीचे पड़ा हुआ है, इसके साथी तो बैल आगे लेकर भाग गये हैं और यह यहीं रह गया है।' यों कहकर उन सबने स्वामीजीको चोर समझकर पकड़ लिया, उनकी गुदड़ी छीन ली और सबने मिलकर उन्हें खूब मारा। किंतु स्वामीजी बिलकुल शान्त रहे और कुछ भी नहीं बोले। पिटते-पिटते स्वामीजीके मुखसे खूनतक बहने लगा। फिर वे उन्हें बाँधकर गाँवमें ले आये और उन्हें किसी चौपालपर ले जाकर एक कोठरीमें बन्द करके डाल दिया। जब प्रात:काल हुआ, तब सबने उन्हें उस कोठरीमेंसे निकाला और पकड़कर उन्हें थाने ले जाने लगे। थानेदार स्वामीजीको अच्छी तरहसे जानता था और वह स्वामीजीका बड़ा प्रेमी था। जब गाँववाले उन्हें लेकर वहाँ पहुँचे, तब थानेदारने दूरसे उन्हें देख लिया। वह कुर्सी छोड़कर भागा हुआ वहाँ आया और स्वामीजीके पैरोंमें पड़कर उसने प्रणाम किया। थानेदारको प्रणाम करते देखकर गाँववाले बहुत घबराये कि यह क्या बात है! थानेदारने सिपाहियोंको बुलाकर कहा कि 'मारो इन दुष्टोंको, ये स्वामीजीको क्यों पकड़कर लाये हैं?' किसानलोग थर-थर काँपने लगे। जब सिपाही उन्हें पकड़ने चले, तब स्वामीजीने उन्हें ऐसा करनेसे रोका और फिर थानेदारसे कहा कि 'देख, जो तू मेरा प्रेमी है तो तू इन्हें कुछ भी दण्ड न दे और इन्हें छोड़ दे तथा सबको मिठाई मँगवाकर खिला।' थानेदारने बहुत-कुछ कहा, परंतु स्वामीजी नहीं माने। उन्होंने थानेदारसे मिठाई मँगवाकर उन्हें खिलवायी और तब लौट जानेकी आज्ञा दी। थानेदार यह देखकर दंग रह गया और बोला कि 'ऐसा महात्मा तो आजतक कभी नहीं देखा।'

वास्तवमें सन्तोंकी रीति ही अनोखी होती है।

विवेक, विश्वास और प्रेम

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

पहले यह बात कही गयी थी कि सब प्रकारकी चाहका अभाव विचार और प्रेमसे होता है। उनमें प्रेमकी बात तो पहले कही गयी थी, परंतु विचारके बारेमें विशेष बात नहीं हुई। अत: अब वही कही जाती है।

वास्तवमें विवेक, विश्वास और प्रेम—इनमें परस्पर कोई विरोध नहीं है। ये एक-दूसरेके सहयोगी हैं। विवेकी पहले जानता है और पीछे मानता है अर्थात् उसपर विश्वास करता है एवं विश्वास करनेवाला पहले मानता है और पीछे जानता है।

यदि मनुष्य बुद्धिसे विचार करके अपने दोषोंको जान ले, परंतु उनका त्याग न करे तो केवल जाननेसे काम नहीं चलता। वैसे ही केवल माननेसे भी काम नहीं चलता। अपनी मान्यताके अनुसार जीवन होना आवश्यक है।

विवेक, विश्वास और प्रेम—ये सभी मनुष्योंको प्राप्त हैं। परंतु प्राप्त विवेकका आदर न करनेके कारण मनुष्य जिनका विश्वास नहीं करना चाहिये, जो विश्वास करनेके योग्य नहीं हैं, अपने जीवनमें जिनपर विश्वास करके बार-बार धोखा खाया है, उनपर तो विश्वास करता है, उनको मानकर उनसे प्रेम करता है और जिनपर विश्वास करना चाहिये, उनपर नहीं करता। जो इसका सचमुच अपना है, उसको अपना नहीं मानता और उससे प्रेम नहीं करता। जो कुछ भी दृश्य है, जिसको मनुष्य इन्द्रिय, मन और बुद्धिके द्वारा देखता है, वह चाहे व्यक्तिके रूपमें हो, चाहे देश, काल और वस्तुके रूपमें, सब-का-सब अनित्य है, इससे मनुष्यका सम्बन्ध सदा नहीं रहता।

अज्ञानवश मनुष्य इनके संयोगको सुखका हेतु मान लेता है, परंतु विचार करनेपर मालूम होता है कि किसीका भी संयोग नित्य सुख देनेवाला नहीं है, क्योंकि अपने प्रिय-से-प्रिय मित्रसे भी मनुष्य अलग होना चाहता है। कोई भी वस्तु कितनी भी प्रिय क्यों न हो, उससे भी अलग होता है। यदि सचमुच कोई व्यक्ति, वस्तु और देश-काल सुखप्रद होता तो प्राणी उसे कभी नहीं छोड़ता, परंतु ऐसा नहीं होता। जाग्रत्‌में जिनके सम्बन्धसे अपनेको सुखी समझता है, स्वप्नमें उनके सम्बन्धका त्याग कर देता है। सुषुप्तिकालमें जाग्रत् और स्वप्न दोनोंके ही दृश्योंसे सम्बन्ध नहीं रहता। इससे सिद्ध होता है कि सभी संयोग वियोगसे युक्त हैं और संयोगकी अपेक्षा संयोगका अभाव ही अधिक सुखप्रद है। यह सभीके अनुभवमें आता है।

अत: साधकको चाहिये कि संयोगकालमें ही उसके वियोगका दर्शन करके किसी भी व्यक्ति, पदार्थ, देश, काल या परिस्थितिमें आसक्त न हो एवं किसीको अपने सुखका आधार न माने। दृश्यमात्रसे सर्वथा असंग हो जाय।

प्रतिदिन मनुष्य सुषुप्तिकालमें सब प्रकारके सम्बन्धोंका त्याग करता है, परंतु उसके अन्त:करणमें राग छिपा रहता है, उसका नाश नहीं होता। इस कारण जगनेपर सबके साथ पहलेकी भाँति सम्बन्ध हो जाता है। जबतक शरीर और समस्त दृश्यवर्गसे सम्बन्ध बना रहता है, तबतक यह उसके सम्बन्धसे अपनेको सुख-दु:खका भोक्ता मानता रहता है तथा दृश्यके सम्बन्धकी आसक्तिके कारण बार-बार जन्मता और मरता रहता है।

इसलिये साधकको विचार करके निश्चय करना चाहिये कि जो कुछ भी देखने, सुनने और अनुभव करनेमें आता है, शरीर, बुद्धि, मन, इन्द्रियोंके सहित किसी भी दृश्य पदार्थसे मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि न तो मेरी और इनकी जातीय एकता है और न स्वरूपकी ही एकता है। अत: इनका और मेरा सम्बन्ध वास्तविक नहीं है। अज्ञानसे माना हुआ है। मैं इनसे सर्वथा असंग नित्य चेतन हूँ। ये सब-के-सब अनित्य और पर-प्रकाश्य हैं।

मनुष्य अज्ञानवश शरीरमें अहंभाव तथा जाति, वर्ण, आश्रम और क्रियाके साथ अपनी एकता करके मानने लगता है कि मैं ब्राह्मण हूँ, मैं अछूत हूँ, मैं

व्यापारी हूँ, मैं गृहस्थी हूँ इत्यादि; किन्तु शरीरसे अलग होकर कोई भी ऐसा अनुभव नहीं करता। अतः विचारशील साधकको सदैव शरीरसे और संसारसे अपनेको सर्वथा असंग कर लेना चाहिये।

जब साधकको यह अनुभव हो जाता है कि 'शरीर मैं नहीं हूँ और दृश्यवर्गसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।' तब उसमें स्वाभाविक असंगता और निर्वासनाका उदय हो जाता है एवं उसका अन्तःकरण अपने-आप शुद्ध हो जाता है। उसमें किसी प्रकारका विकार नहीं रहता। अन्तःकरण शुद्ध होते ही बोध प्रकट हो जाता है और साधकको अपने लक्ष्यकी प्राप्ति हो जाती है। ध्यान रहे कि किसी-न-किसी प्रकारके संगसे 'अहं'का भास होता है और उसीसे 'मम'की उत्पत्ति होती है एवं 'अहं' और 'मम'से ही चित्त अशुद्ध होता है। अतः चित्तशुद्धिके लिये 'अहं' और 'मम'का नाश करना अनिवार्य है और वह तभी होगा, जब दृश्यमात्रसे विमुखता प्राप्त होगी। विमुखता प्राप्त होते ही मैं और मेरा, तू और तेरेमें बदल जाता है अर्थात् जो वास्तवमें है, वह शेष रह जाता है। उसीमें प्रेम हो सकता है, उसीसे योग हो सकता है और उसीका बोध होता है। इन तीनोंकी एकता ही वास्तविक एकता है और उसीसे प्राणीके सब प्रकारके अभावोंका अभाव होता है, जो प्राणिमात्रको प्रिय है। अतः यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि विचारपूर्वक चित्त शुद्ध करना ही जीवका परम पुरुषार्थ है।

'पांचजन्य लो हाथमें'

(पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

(१)

कहाँ पड़ी है गदा गदाधर? आज तुम्हारी?
कहाँ सुदर्शन चक्र? नक्रका जो संहारी॥
हमें निहत्थे देख शत्रु चढ़ आये ऊपर।
भारी संकट आज मुरारे! भारत भू पर॥
धीर धनञ्जयको लिये आओ सत्वर साथमें।
मुरलीधर! मुरली धरो, पांचजन्य लो हाथमें॥

(२)

पाँच गाँवके लिये महाभारतके हामी!
बैठे हो क्यों मौन कहाँ त्रिभुवनके स्वामी?
पाँच गाँवका नहीं हिमालयका सवाल है।
जिसके हित उठ खड़ा हुआ भारी बवाल है॥
आज त्रिविष्टप पर हुआ असुरोंका अधिकार है।
देवलोक व्याकुल तुम्हें कबसे रहा पुकार है॥

(३)

दैवेच्छासे धर्मयुद्ध है सम्मुख आया।
आ धमका है स्वयं न हमने इसे बुलाया॥
कोटि कण्ठमें गूँज उठे फिर गीताका स्वर।
टूट पड़े भारत निर्भय रिपुओंके ऊपर॥
रथी भक्तके हित पुनः बन जाओ रथवान् तुम।
जीत वहीं जिस पक्षमें स्वयं धर्म भगवान् तुम॥

गो-चिन्तन—

गोमाताकी सेवासे पुनरुत्थान

मेरे पूर्वज गाँवके सदा सम्पन्न किसान रहे। मेरे पिताजीका भी जीवन उन्नत रहा, वे चार-पाँच घण्टे ईश्वराराधनमें लगाते और शेष समय साहूकारी, गल्ला-बीजके देनेमें तथा खेतीके कार्यमें व्यतीत करते। इस कार्यमें उनका खूब मन लगता। उन्होंने भूमि भी पर्याप्त एकत्र कर ली थी। वे कृषि बहुत उत्तम तरीकेसे करते। गाँवके लोगोंपर उनका प्रभाव था और सब लोग उनसे सन्तुष्ट रहते थे। पिताजीके परलोकगमनके बाद गृहस्थीका सारा दायित्व मुझपर आ पड़ा, किंतु क्रमशः सम्पत्तिका ह्रास होने लगा। थोड़े ही समयमें मेरी सम्पत्ति आधी रह गयी। भूमिका कार्य स्थगित हो गया। बीजका गल्ला सब डूब गया। पैसेकी आय बन्द हो गयी। खेतीसे अन्न कम होने लगा और अधिकांश जमीन परती पड़ गयी। देखते-देखते सारा काम चौपट हो गया।

मैं रात-दिन चिन्तित रहने लगा। भाग्यने जैसे मेरा साथ छोड़ दिया था। मैं जिस कार्यमें हाथ डालता, उसीमें असफल होता। मेरे दो और छोटे भाई हैं। उन लोगोंकी इच्छासे मुझे उनसे पृथक् होना पड़ा। सारी सम्पत्ति तीन भागोंमें बराबर-बराबर बाँटकर हम सब अपना-अपना कार्य चलाने लगे। चार वर्ष बीत गये, किंतु मेरी दशा उत्तरोत्तर अवनत ही होती गयी। गाँवके लोग मुझे निरुद्यमी और आलसी कहने लगे। मुझपर ऋण भी काफी हो गया। यहाँतक कि अनाजके लिये भी मैं दूसरोंका मुँह देखने लगा। जिनको मैं गल्ला और रुपया दिया करता था, अब उनके द्वारपर मुझे दौड़ना पड़ता, किंतु इतना होनेपर भी मैंने धैर्य नहीं छोड़ा और भगवान्‌का भरोसा मेरे मनमें ज्यों-का-त्यों बना रहा।

एक दिन चिन्तित-मन चारपाईपर मैं लेटा हुआ था कि मेरी आँख लग गयी। निद्रामें मुझे लगा कि बैल-गाय मुझे मारने दौड़ रहे हैं और मनुष्यकी भाषामें बोलते हुए मुझसे कह रहे हैं कि 'अभी हम तुझे और तंग करेंगे। तूने अपने खाने-पीनेके सिवा कभी हमारी भी खबर ली है कि हम भूखे या प्यासे हैं? गोशालामें कभी जाकर देखा भी है कि वह साफ है या हम गोबर-मूत्रमें पड़े हैं? तू अपने इसी पापका परिणाम भोग रहा है। तू अब भी चेत जा और अपना तरीका बदल दे, नहीं तो अन्ततः तेरा सर्वनाश हो जायगा।'

गाय-बैलोंके वचन सुनकर मुझे बहुत व्यथा हुई और मैं चौंककर जाग उठा। मैंने देखा, यह तो स्वप्न था। रात आधीसे अधिक बीत चुकी थी। किंतु मैं उसी समय लालटेन लेकर गोशालामें गया। वहाँ देखा, सारे पशु भूखे खूँटेसे बँधे हैं। उनके आगे घास-भूसाका एक तिनका भी नहीं, कूड़ेका तो ढेर लगा है। मैं मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगा। मैंने उसी क्षण अपने हाथसे गोशालाको साफ करना शुरू किया और दिनके दस बजेतक गोशालाकी सफाईमें लगा रहा। उस दिनसे हर समय मैं अपने जानवरों एवं गोशालापर ध्यान रखने लगा। प्रातः-सायं गोदुग्ध अपने हाथसे दुहना और चारा-घास एवं स्वच्छ जल अपने सामने डलवाना मेरा मुख्य कर्तव्य हो गया। मेरे गाय-बैल जब चरने जाते, तब मैं गोशाला अपने हाथोंसे साफ करता। कूड़ा-करकट अलग गड्ढेमें डालता और उसकी अच्छी खाद बनती। जानवर सुखपूर्वक रहने लगे। मेरे जानवर स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट हो गये। घृत-दुग्ध पर्याप्त मिलने लगा। बैलोंके सुस्वास्थ्यके कारण मेरी कृषि चमक उठी और अनाज पाँच-छः गुना अधिक उत्पन्न होने लगा। खेतीमें मेरी रुचि बढ़ गयी और निराशा दूर हो गयी। ऋण भी अधिकांश चुका दिया गया। मेरी स्थितिमें काफी परिवर्तन हो गया। मुझे निरुद्यमी, आलसी और अभागे कहनेवाले लोग अब मेरी प्रशंसा करने लगे।

यह घटना बिलकुल सच्ची है। रईसीके चक्करमें मैं अपनी सम्पत्तिका नाश कर चुका था, किंतु आज ईश्वरकी कृपा, गो-माताका आशिष और अपने हाथोंसे काम करनेके कारण मेरी दशा अत्यन्त सुन्दर हो गयी। यदि कोई गो-पालक कृषक भाई मेरी तरह दरिद्रनारायणके शिकार हो गये हों, तो उन्हें मेरे पथका अनुसरण करना चाहिये। मैं डंकेकी चोटपर कहता हूँ कि भगवान्‌पर विश्वास और गो-माताकी सेवासे बुरी-से-बुरी हालत बदलकर अच्छी हो जायगी। **—एक गो-सेवक कृषक**

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवान् अकारण करुण हैं

प्रिय महोदय! प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। उत्तर इस प्रकार है—

आपको झूठ बोलने और पाप करनेमें जो हिचक नहीं होती और डर नहीं लगता, इसका तो यह कारण है कि उनसे होनेवाले परिणामपर आपका विश्वास नहीं है तथा वर्तमानमें झूठ बोलकर और पाप करके आप किसी-न-किसी प्रकारकी भोगवासनाकी पूर्ति करना चाहते हैं, पर वास्तवमें यह बड़ी भारी भूल है। सुखभोगकी इच्छा कभी भी पूरी नहीं हो सकती; क्योंकि भोगोंकी प्राप्ति इच्छासे नहीं होती। वे तो कर्मफलके रूपमें मिलते हैं और जैसे-जैसे मिलते हैं, इच्छाको बढ़ाते रहते हैं; इस परिस्थितिमें इच्छाकी पूर्ति कैसे हो। उसकी तो विचारद्वारा ही निवृत्ति हो सकती है।

आपने लिखा कि धर्म क्या है और पाप क्या है? उसका मुझे ज्ञान नहीं है, सो ऐसी बात नहीं है। ज्ञान तो आपको अवश्य है, पर आप उस ज्ञानका आदर नहीं करते। आप समझते हैं कि झूठ बोलना बुरा है—पाप है। झूठ नहीं बोलना चाहिये—ऐसा दूसरोंसे कहते भी हैं। यदि कोई बोलता है तो उसका झूठ बोलना आपको बुरा भी लगता है, तथापि आप झूठ बोलनेके लिये विवश हो जाते हैं, यही अपने ज्ञानका अनादर करना है। यदि आप जितना जानते हैं, उतने धर्मका पालन करना आरम्भ कर दें, तो आवश्यक जानकारी स्वयं प्राप्त हो सकती है; यह भगवत्कृपाकी महिमा है।

'भगवान् क्या हैं'—यह जानना नहीं बनता; क्योंकि भगवान् मनुष्यकी ज्ञानशक्तिके बाहर हैं। भगवान्पर तो विश्वास किया जा सकता है, उनको माना जा सकता है, उनकी महिमा और प्रभावका दर्शनकर, सुनकर, समझकर और मानकर उनपर निर्भर हुआ जा सकता है। ऐसा करनेपर साधक कृतकृत्य हो सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

भगवान् अकारण ही कृपा करनेवाले हैं, यह ध्रुव सत्य है, तभी तो आप और हम सब लोग जो कि उनको नहीं मानते वे भी और जो उनको मानते हैं वे भी उनकी बनायी हुई हवा, अग्नि, जल, प्रकाश आदिका बिना ही किसी प्रकारका मूल्य दिये उपभोग कर पाते हैं। यदि वे अकारण कृपालु नहीं होते, तो क्या इनपर रोक नहीं लगा देते, क्या टैक्स नहीं बाँध देते? पर वे ऐसा नहीं करते; क्योंकि वे उदारचित्त हैं।

जो यह बात मान लेता है कि भगवान् अकारण ही कृपालु हैं, वह तो उन्हींका होकर रहता है, वह फिर उनको भूल ही कैसे सकता है।

आप लिखते हैं कि मुझे भगवान्को पानेकी इच्छा नहीं है, इससे तो स्पष्ट ही मालूम होता है कि न तो आपको यह विश्वास है कि भगवान् अकारण ही कृपालु हैं, न उनकी महिमाका ही ज्ञान है और न उनकी सत्तापर ही पूरा विश्वास है; क्योंकि जो यह समझता है कि भगवान् किसको कहते हैं, वह क्या कर सकते हैं, क्या कर रहे हैं, उनमें क्या-क्या गुण हैं, उनको प्राप्त होना क्या है? इस रहस्यको जाननेवाला भला उनको बिना प्राप्त किये कैसे रह सकता है?

आपकी जो यह मान्यता है कि बिना छल, कपट और चालाकीके मुसीबत नहीं टलती, यह सर्वथा निराधार है। छल, कपट और चालाकीका ही परिणाम तो मुसीबत है, इसी कारण एक टलती है तो दूसरी आ जाती है। छल, कपट और चालाकीका सर्वथा त्याग कर देनेपर ही वास्तवमें मुसीबत सदाके लिये टल जाती है, यह समझना चाहिये।

आपने लिखा कि मैं क्या हूँ, कौन हूँ, यह समझमें नहीं आता। इसका तो यह अर्थ होता है कि वास्तवमें आप इसे समझना ही नहीं चाहते। मुसीबत जिसपर आती है, जो उसे टालना चाहता है, जिसे मुसीबतका ज्ञान है, वही आप हैं।

आपकी इच्छा पूर्ण नहीं होती, यह तो उचित ही है, यदि आपकी या इसी प्रकारके भाववाले अन्य मनुष्योंकी इच्छा पूर्ण होने लगे तो संसारमें सारा काम अव्यवस्थित हो जाय; क्योंकि आपकी इच्छाओंमें तो दूसरोंका अहित और अपना स्वार्थ भरा हुआ है, तभी तो आप पापपूर्ण कर्म और भले-बुरे सभी मनुष्योंकी निन्दा करते हैं।

यदि आपको जीवनसे घृणा होती है, आपके मनमें अपना सुधार करनेकी इच्छा होती है तो समझना चाहिये कि भगवान्की बड़ी कृपा है। सुधार चाहनेवालेका

सुधार होना कठिन नहीं है, दु:खोंसे छूटनेका उपाय तो यही ठीक मालूम होता है कि उस दु:खहारी प्रभुकी शरण ग्रहण करके उनके दिये हुए विवेकका आदर करें तथा वह काम करें जो हम दूसरोंसे चाहते हैं और वह कभी न करें जो हम दूसरोंसे नहीं चाहते। अर्थात् जिसको हम अपने लिये अच्छा समझते हैं, उसको सबके लिये अच्छा समझें और जिसे हम अपने लिये बुरा समझते हैं, उसे सबके लिये बुरा समझें। शेष प्रभुकृपा।

(२)

विविध प्रश्नोत्तर

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपके दो पत्र एक साथ मिले। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

१. भगवान् रामके स्वभावको जान लेनेवालेके द्वारा भजन अपने-आप हुआ करता है, उसे करना नहीं पड़ता प्रत्युत वह उसे भूल नहीं सकता। यहाँ भजनसे अभिप्राय भगवान्‌की स्वाभाविक मधुरस्मृति है। 'भज्' धातुका अर्थ सेवा है, वह 'सेवन' स्मृतिके ही अन्तर्गत है। इसीलिये जप-ध्यान आदिको भी भजन कहा जाता है। इस दृष्टिसे योग और ज्ञानको भी कोई भजन कहे तो कोई बुराई नहीं है; क्योंकि भगवान्‌के स्वभावको जानना भी तो ज्ञान ही है, जो कि भजनका हेतु है।

२. '**मामनुस्मर युध्य च**' इसमें मन, वाणी और शरीरद्वारा ऊपरसे क्रियाका भेद दीखनेपर भी वास्तवमें भेद नहीं है। जहाँ अपने कर्मोंद्वारा उस प्रेमास्पदकी ही पूजा की जाती है, वहाँ सभी क्रियाभेदोंमें अपने प्रियतमका स्मरण गोपियोंकी भाँति निरन्तर रहता है, यह स्वाभाविक नियम है। अत: उसे मनसे कुछ और करना और शरीरसे कुछ और करना नहीं कहा जाता। बिना मनके क्या युद्धकी क्रिया की जा सकती है? कदापि नहीं। मन तो उसमें भी पूरा-पूरा लगाना पड़ता है, पर जो साधक अपने प्रेमास्पदको सर्वत्र देखता है, उससे वह छिप कैसे सकता है? गीता अध्याय ६ श्लोक ३०-३१ देखें। इस तत्त्वको समझ लेनेके बाद अड़चन और शंका नहीं रहती। इसीलिये उक्त श्लोकके उत्तरार्धमें कहा है कि '**मय्यर्पितमनोबुद्धिः**'।

३. '**यतो यतो निश्चरति**' यह श्लोक एकान्तमें ध्यान करनेके समयका है, कर्मयोगका नहीं। दोनोंके अधिकारी एकसे नहीं होते। पूर्वोक्त साधन अभ्यासयोग नहीं है, वह भगवत्-परायण प्रेमी भक्तका साधन है।

४. निष्काम कर्म यदि भगवदर्थ हो, तो उसमें स्मरण भी है। उसके कर्म स्मरणके विरोधी नहीं होते। स्मरणका सम्बन्ध प्रेमसे है, क्रियासे नहीं।

५. कामनाकी निवृत्ति और निष्काम कर्मका अर्थ समझ लेनेसे यह उलझन मिट जाती है। जिस कर्ममें अपने सुखभोगकी और पद एवं अधिकार-पूर्तिकी कामनाका त्याग है, जो दूसरोंके अधिकारकी पूर्ति और उनकी हितपूर्ण प्रसन्नताके लिये कर्तव्यपालनके रूपमें किया जाता है या यों समझें कि जो प्रभुकी प्रसन्नताके लिये, उन्हींकी आज्ञा और प्रेरणाके अनुसार उन्हींकी कृपासे प्राप्त सामर्थ्य-सामग्रीके द्वारा किया जाता है, वह कर्म निष्कामकर्म है। इस प्रकारका कर्म साधकके अन्त:करणको शुद्ध करता है, राग-द्वेषका नाश करता है और भगवान्‌के प्रेमको प्रकट करता है। कामनाकी पूर्ण निवृत्ति जिस ज्ञानसे होती है, वह निष्कामकर्मयोगका फल है, वही ज्ञानयोगका भी फल है; गीता अ० ४ श्लोक ३८, ३९ देखें।

बिना तत्त्वज्ञानके और फलकी कामनासे किया जानेवाला कर्म, निष्कामकर्म नहीं है। गीता अ० २ श्लोक ४९ देखें। साधन नाम उसीका है, जिसे सर्वसाधारण मनुष्य कर सके। प्रकृति, विश्वास, योग्यता और रुचिके भेदसे साधनमें प्रकार-भेद हो सकता है।

६. संगत्यागके लिये न तो आश्रम बदलना आवश्यक है और न अपने-आप न्याययुक्त प्राप्त हुए संयोगका त्याग ही। आजका समाज चाहे जैसा भी हो, साधकके लिये तो वह साधनसामग्री है। उसीकी सेवा करके अपने प्रियतमकी प्रसन्नता प्राप्त करना उसका मुख्य उद्देश्य होना चाहिये। समाजके साथ ममता और आसक्ति न रहनेपर उसके संयोग और वियोग साधकके लिये हानिकर नहीं हो सकते। इस रहस्यको समझनेवाला साधक अनायास ही वर्तमान परिस्थितिमें अपने लक्ष्यकी प्राप्ति कर सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। कठिनाइयाँ सब साधकने स्वयं ही बना रखी हैं। उसमें न तो समाजका दोष है, न सरकारका और न ईश्वरका ही। दूसरोंके मत्थे दोष मँढ़कर अपनेको निर्दोष मानना अपने आपको धोखा देना है। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२१, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १२।२ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा रात्रिमें ४।० बजेतक	२९ जनवरी	**सिंहराशि** रात्रिमें ४।० बजेसे।
द्वितीया ,, ११।३ बजेतक	शनि	मघा ,, ३।३३ बजेतक	३० ,,	**मूल** रात्रिमें ३।३३ बजेतक।
तृतीया ,, ९।४० बजेतक	रवि	पू० फा० ,, २।४५ बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।२१ बजेसे रात्रिमें ९।४० बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।१९ बजे।
चतुर्थी ,, ७।५७ बजेतक	सोम	उ० फा० ,, १।३७ बजेतक	१ फरवरी	**कन्याराशि** दिनमें ८।२८ बजेसे।
पंचमी सायं ५।५६ बजेतक	मंगल	हस्त ,, १२।१३ बजेतक	२ ,,	× × × ×
षष्ठी दिनमें ३।४४ बजेतक	बुध	चित्रा ,, १०।४० बजेतक	३ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।४४ बजेसे रात्रिमें २।३५ बजेतक, **तुलाराशि** दिनमें ११।२६ बजेसे।
सप्तमी ,, १।२४ बजेतक	गुरु	स्वाती ,, ९।० बजेतक	४ ,,	**अष्टकाश्राद्ध।**
अष्टमी ,, ११।१ बजेतक	शुक्र	विशाखा ,, ७।१९ बजेतक	५ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें १।४३ बजेसे।
नवमी ,, ८।४१ बजेतक	शनि	अनुराधा सायं ५।४३ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७।३५ बजेसे रात्रिशेष ६।२९ बजेतक, **धनिष्ठाका सूर्य** दिनमें ११।४५ बजे, **मूल** सायं ५।४३ बजेसे।
एकादशी रात्रिमें ४।२८ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा सायं ४।१६ बजेतक	७ ,,	**धनुराशि** सायं ४।१६ बजेसे, **षट्तिला एकादशीव्रत** (स्मार्त्त)।
द्वादशी ,, २।४३ बजेतक	सोम	मूल दिनमें ३।३ बजेतक	८ ,,	**मूल** दिनमें ३।३ बजेतक, **वैष्णव एकादशीव्रत।**
त्रयोदशी ,, १।२० बजेतक	मंगल	पू० षा० ,, २।१० बजेतक	९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १।२० बजेसे, **मकरराशि** रात्रिमें ८।१ बजेसे, **भौमप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, १२।१९ बजेतक	बुध	उ० षा० १।३६ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें १२।४९ बजेतक।
अमावस्या ,, ११।४८ बजेतक	गुरु	श्रवण ,, १।२९ बजेतक	११ ,,	**मौनी अमावस्या, कुम्भराशि** रात्रिमें १।४० बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें १।४० बजे।

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२१, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ११।४७ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा दिनमें १।५१ बजेतक	१२ फरवरी	**कुम्भसंक्रान्ति** रात्रिमें १।२२ बजे।
द्वितीया ,, १२।१७ बजेतक	शनि	शतभिषा ,, २।४२ बजेतक	१३ ,,	× × × ×
तृतीया ,, १।१८ बजेतक	रवि	पू० भा० सायं ४।६ बजेतक	१४ ,,	**मीनराशि** दिनमें ९।४५ बजेसे।
चतुर्थी ,, २।४५ बजेतक	सोम	उ० भा० ,, ५।५६ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** दिनमें २।१ बजेसे रात्रिमें २।४५ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल** सायं ५।५६ बजेसे।
पंचमी सायं ४।३४ बजेतक	मंगल	रेवती रात्रिमें ८।८ बजेतक	१६ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ८।८ बजेसे, **श्रीवसन्तपंचमी, पंचक समाप्त** रात्रिमें ८।८ बजे।
षष्ठी अहोरात्र	बुध	अश्विनी ,, १०।३८ बजेतक	१७ ,,	**मूल** रात्रिमें १०।३८ बजेतक।
षष्ठी प्रात: ६।३८ बजेतक	गुरु	भरणी ,, १।१५ बजेतक	१८ ,,	**वृषराशि** प्रात: ७।५३ बजेसे, **सायन मीनका सूर्य** रात्रिमें ८।३० बजे।
सप्तमी दिनमें ८।४६ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका ,, ३।३५ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।४६ बजेसे रात्रिमें ९।४८ बजेतक, **अचलासप्तमी, रथसप्तमी, शतभिषाका सूर्य** दिनमें ३।२२ बजे।
अष्टमी ,, १०।४५ बजेतक	शनि	रोहिणी ,, ६।११ बजेतक	२० ,,	× × × ×
नवमी ,, १२।३८ बजेतक	रवि	मृगशिरा अहोरात्र	२१ ,,	**मिथुनराशि** रात्रि ७।१३ बजेसे।
दशमी ,, २।४ बजेतक	सोम	मृगशिरा प्रात: ८।१३ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।३४ बजेसे।
एकादशी ,, ३।२ बजेतक	मंगल	आर्द्रा दिनमें ९।४९ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।२ बजेतक, **कर्कराशि** रात्रिमें ४।४१ बजेसे, **जया एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, ३।३१ बजेतक	बुध	पुनर्वसु ,, १०।५८ बजेतक	२४ ,,	**प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, ३।२७ बजेतक	गुरु	पुष्य ,, ११।३५ बजेतक	२५ ,,	**मूल** दिनमें ११।३५ बजेसे।
चतुर्दशी ,, २।५३ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा ,, ११।४३ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** दिनमें २।५३ बजेसे रात्रिमें २।२३ बजेतक, **सिंहराशि** दिनमें ११।४३ बजेसे।
पूर्णिमा ,, १।५१ बजेतक	शनि	मघा ,, ११।२३ बजेतक	२७ ,,	**माघीपूर्णिमा, माघस्नान** समाप्त, **मूल** दिनमें ११।२३ बजेतक।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२१, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, फाल्गुन-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १२। २६ बजेतक	रवि	पू०फा० दिनमें १०।४० बजेतक	२८ फरवरी	**कन्याराशि** दिनमें ४। २५ बजेसे।
द्वितीया ,, १०।३९ बजेतक	सोम	उ०फा० ,, ९। ३६ बजेतक	१ मार्च	**भद्रा** रात्रिमें ९। ३९ बजेसे।
तृतीया ,, ८।३७ बजेतक	मंगल	हस्त दिनमें ८। १५ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें ८। ३७ बजेतक, **तुलाराशि** रात्रिमें ७। ३० बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। १५ बजे।
चतुर्थी प्रात: ६। २३ बजेतक	बुध	चित्रा प्रात: ६। ४४ बजेतक	३ ,,	× × × ×
षष्ठी रात्रिमें १। ३८ बजेतक	गुरु	विशाखा रात्रिमें ६। २५ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १। ३८ बजेसे, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें ९। ५० बजेसे, **पूर्व भाद्रपदका सूर्य** रात्रिमें ८। ५६ बजे।
सप्तमी ,, ११।१६ बजेतक	शुक्र	अनुराधा ,, १। ४७ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। २६ बजेतक, **मूल** रात्रिमें १। ४७ बजेसे।
अष्टमी ,, ९। २ बजेतक	शनि	ज्येष्ठा ,, १२। १८ बजेतक	६ ,,	**धनुराशि** रात्रिमें १२। १८ बजेसे, **जानकी-जयन्ती।**
नवमी ,, ७।१ बजेतक	रवि	मूल ,, ११। २ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ६। ९ बजेसे, **मूल** रात्रिमें ११। २ बजेतक।
दशमी सायं ५।१६ बजेतक	सोम	पू०षा० ,, १०। ४ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** सायं ५। १६ बजेतक, **मकरराशि** रात्रिमें ३। ५५ बजेसे।
एकादशी दिनमें ३।५२ बजेतक	मंगल	उ०षा० ,, ९। २६ बजेतक	९ ,,	**विजया एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, २।५२ बजेतक	बुध	श्रवण ,, ९। १२ बजेतक	१० ,,	**प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, २।२२ बजेतक	गुरु	धनिष्ठा ,, ९। २९ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** दिनमें २। २२ बजेसे रात्रिमें २। २० बजेतक, **कुंभराशि** रात्रिमें ९। २० बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ९। २० बजे, **महाशिवरात्रिव्रत।**
चतुर्दशी ,, २।२० बजेतक	शुक्र	शतभिषा ,, १०। १५ बजेतक	१२ ,,	× × × ×
अमावस्या ,, २।५१ बजेतक	शनि	पू०भा० ,, ११। ३१ बजेतक	१३ ,,	**मीनराशि** सायं ५। ११ बजेसे, **अमावस्या।**

सं० २०७७, शक सं० १९४२-१९४३, सन् २०२१, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-वसन्त ऋतु, फाल्गुन-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ३।५१ बजेतक	रवि	उ०भा० रात्रिमें १। १४ बजेतक	१४ मार्च	**मूल** रात्रिमें १। १४ बजेसे, **मीन संक्रान्ति** रात्रिमें ८। ३५ बजे, **वसन्तऋतु प्रारम्भ, खरमासारम्भ।**
द्वितीया सायं ५।२० बजेतक	सोम	रेवती ,, ३। २४ बजेतक	१५ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ३। २४ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ३। २४ बजे।
तृतीया रात्रिमें ७।८ बजेतक	मंगल	अश्वनी रात्रिशेष ५।४९ बजेतक	१६ ,,	**मूल** रात्रिशेष ५। ४९ बजेतक।
चतुर्थी ,, ९। १२ बजेतक	बुध	भरणी अहोरात्र	१७ ,,	**भद्रा** प्रात: ८। १० बजेसे रात्रिमें ९। १२ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, उ०भा० का सूर्य** रात्रिशेष ४। ४७ बजे।
पंचमी ,, ११।१८ बजेतक	गुरु	भरणी दिनमें ८। २४ बजेतक	१८ ,,	**वृषराशि** दिनमें ३। ४ बजेसे।
षष्ठी ,, १। २० बजेतक	शुक्र	कृत्तिका ,, ११।१ बजेतक	१९ ,,	× × × ×
सप्तमी ,, ३।५ बजेतक	शनि	रोहिणी ,, १। २६ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३। ५ बजेसे, **मिथुनराशि** रात्रिमें २। ३१ बजेसे, **सायन मेषका सूर्य** सायं ५। ३४ बजे।
अष्टमी रात्रिशेष ४।२७ बजेतक	रवि	मृगशिरा ,, ३। ३४ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। ४५ बजेतक, **होलाष्टकारम्भ**
नवमी ,, ५। २२ बजेतक	सोम	आर्द्रा सायं ५। १६ बजेतक	२२ ,,	**शक संवत् १९४३ प्रारम्भ।**
दशमी ,, ५।४७ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु रात्रिमें ६। ३२ बजेतक	२३ ,,	**कर्कराशि** दिनमें १२। १२ बजेसे।
एकादशी ,, ५।३९ बजेतक	बुध	पुष्य ,, ७।१६ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** सायं ५।४१ बजेसे रात्रिशेष ५।३९ बजेतक, **आमलकी एकादशीव्रत (स्मार्त्त), मूल** रात्रिमें ७। १६ बजेसे।
द्वादशी ,, ५। २ बजेतक	गुरु	आश्लेषा ,, ७। ३० बजेतक	२५ ,,	**सिंहराशि** रात्रिमें ७। ३० बजेसे, **एकादशीव्रत (वैष्णव)।**
त्रयोदशी रात्रिमें ३। ५७ बजेतक	शुक्र	मघा ,, ७। १५ बजेतक	२६ ,,	**प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, २। २९ बजेतक	शनि	पू०फा० ,, ६। ३७ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २। २९ बजेसे, **कन्याराशि** रात्रिमें १२। २२ बजेसे।
पूर्णिमा ,, १२।४० बजेतक	रवि	उ०फा० सायं ५। ३८ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** दिनमें १। ३४ बजेतक, **पूर्णिमा, होलिकादाह (प्रदोषमें)।**

कृपानुभूति

मार्गदर्शक

घटना २६ दिसम्बर २००६ई० की है। मैं अपनी चार-वर्षीय बेटी और लगभग पैंसठ-वर्षीय ननदजीके साथ काशी-विश्वनाथके दर्शनहेतु वाराणसी गयी थी। वहींसे हम सुबह टैक्सी लेकर सड़क-मार्गद्वारा संगम-स्नानके लिये प्रयागराज पहुँचे। दोपहर बाद स्नान-ध्यानसे निवृत्त होकर वहाँसे हमने अयोध्याकी ओर कूच किया। रास्तेमें अवध विश्वविद्यालय दिखा, तो मैंने टैक्सी उस ओर मुड़वा ली। मैं पंजाब विश्वविद्यालयसे संलग्न डी०ए०वी० कॉलेज होशियारपुरमें अंग्रेजी विभागमें एसोसिएट प्रोफेसरके पदपर कार्यरत थी, अत: अवध विश्वविद्यालयके उपकुलपतिसे भेंट करनेके उद्देश्यसे मैंने टैक्सी ड्राइवरको विश्वविद्यालय-परिसरमें चलनेका आदेश दिया। वहाँ कुछ प्रोफेसर साहिबानसे मेरी भेंट हुई और विचारोंका आदान-प्रदान भी हुआ, परंतु उपकुलपति महोदय उस समय किसी कार्यवश विश्वविद्यालयसे बाहर गये थे, अत: उनसे भेंट न हो सकी। करीब छ: बजे शाम हम विश्वविद्यालय-परिसरसे जब बाहर निकले तो अँधेरा होने लगा था। हमारी टैक्सी अयोध्याकी तरफ रवाना हुई।

कुछ ही देरमें घना अँधेरा होने लगा और टैक्सी ड्राइवर सम्भवत: रास्ता भटक गया। हमने अपनी टैक्सीको घने जंगलमें पाया, जहाँ दूर-दूरतक रोशनी या किसी भी तरहके जीवनका कोई निशान नहीं था। उस वीरान रास्तेपर अँधेरेमें टैक्सी भटकने लगी। अनजान रास्ता, मुसलमान टैक्सी ड्राइवर, हम दो महिलाएँ और एक बच्ची क्या करें, कहाँ जायँ? हमने कुछ स्वर्ण-आभूषण भी पहन रखे थे। तरह-तरहके बुरे विचार मनको घेरने लगे। अनिष्टकी आशंका, घोर आशंका सताने लगी। जब हम ड्राइवरको कुछ भी कहें तो वह कोई सीधा जवाब न दे। बेटी घबराकर रोने लगी।

उस विषम परिस्थितिमें मैंने भगवान् रामको स्मरण किया और कहा—'हे भगवान्! हम तो आपके दर्शन-हेतु अयोध्या आ रहे हैं। अब हमारी लाज आपके हाथमें है। हमारा मार्गदर्शन करो।' मेरी ननदजी भी राम नामका निरन्तर जप करने लगीं।

सहसा टैक्सीकी सामनेवाली लाइटोंके प्रकाशमें एक मानव-आकृति दिखायी दी, जो हाथ देकर हमारी टैक्सीको रोक रही थी। मैंने तत्काल टैक्सी रुकवायी तो देखा कि १४ से २० सालका एक किशोर रास्ता रोक रहा था। उसने मुझसे पूछा—'माता! आप कौन हैं, कहाँ जाना है?' मैंने उसे बताया कि हम अयोध्या-दर्शनके लिये आये हैं, पर फैजाबादसे रास्ता भटक गये हैं। वह किशोर नवयुवक फौरन टैक्सी ड्राइवरके साथवाली अगली सीटपर बैठ गया और रास्ता बताने लगा। उसके दिशा-निर्देशोंपर टैक्सी-ड्राइवर टैक्सी घुमाने लगा। आश्चर्य! लगभग ५ से ७ मिनटोंके भीतर ही हम मुख्य मार्गपर जा पहुँचे। उस युवकने टैक्सी अयोध्याके राम होटलके सामने रुकवा दी और मुझे साथ लेकर होटल मैनेजरके पास पहुँचा। उसने मैनेजरसे कहा कि 'ये माताएँ बड़ी दूरसे अयोध्या आयी हैं। इनके ठहरनेके लिये बढ़िया कमरा और भोजनादिकी व्यवस्था करवायी जाय।' मैनेजरने होटलके कर्मचारीको भेजकर टैक्सीसे सामान निकलवाया और मेरी ननदजी होटलके कमरेमें सामान रखवाने लगीं।

हमने यह समझा कि यह युवक शायद होटलोंका एजेण्ट या कोई टूरिस्ट गाइड है और यात्रियोंको होटलोंमें कमरा दिलवाकर कमीशन लेता है। होटलके रजिस्टरपर हस्ताक्षर आदि करनेकी औपचारिकताके बाद मैं पीछे मुड़ी, ताकि उस युवकको कमीशन दे सकूँ और उसका धन्यवाद करूँ, परंतु वह नवयुवक कहीं भी नजर न आया। मैंने होटल मैनेजरसे उसके बारेमें पूछा तो उसने अनभिज्ञता जाहिर करते हुए कहा कि 'उस युवकको पहले किसीने भी यहाँ कभी नहीं देखा है।' अब हमारी जिज्ञासा बढ़ी और हमने उसे ढूँढ़ना शुरू किया, परंतु वह तो वहाँसे अलोप हो चुका था। स्थानीय निवासी उसके विषयमें कुछ भी नहीं जानते थे।

तब जाकर हमें यह समझ आया कि उस अँधेरी रातमें निर्जन वीरान मार्गपर जिसने हमें रास्ता दिखाया, वह कोई और नहीं, स्वयं वह थे, जिनके दर्शनोंके लिये हम आये थे। पर हाय! हमारी मूढ़ मति तब उन्हें पहचान न सकी। सच्चे मनसे पुकारनेपर भगवान् स्वयं आकर सहायता देते हैं, मार्गदर्शन करते हैं, पर हम उन्हें पहचान नहीं पाते।—**प्रो० श्रीमती पूजा वशिष्ट**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

कृष्णभक्तोंकी सेवा भी कृष्णभक्ति है

अनेक बार मैंने वृन्दावनकी यात्रा की है। एक बार वृन्दावनके तीर्थोंकी यात्रा करनेके लिये पर्याप्त समय लेकर निकला। वृन्दावनमें मेरा पड़ाव चार सम्प्रदाय आश्रममें था। महत्त्वपूर्ण दर्शनीय स्थानोंका भली-भाँति दर्शन करनेके उद्देश्यसे एक गाइडको भी साथ ले लिया। थोड़ा चलनेके पश्चात् मुझे पता चला कि मेरे गाइडकी आँखें बहुत कमजोर हैं। मुश्किलसे थोड़ा देख सकता है, और उसीके सहारे वह दर्शनार्थियोंके मार्गदर्शकका कार्य करता है। थोड़ी बात करनेपर पता चला कि आँखें कमजोर होनेके बावजूद वृन्दावनके तीर्थोंके बारेमें उसको गहरी जानकारी है। वह मुझे एकके-बाद-एक दर्शनीय स्थानोंपर ले जाता; उस स्थानका इतिहास, माहात्म्य, सम्प्रदाय आदिकी प्रामाणिक एवं मर्मस्पर्शी सूचना वह मुझे देता। वृन्दावनकी सँकरी गलियोंमेंसे गुजरते हुए एवं दर्शनीय स्थानोंके दर्शन करते हुए हम आगे बढ़े। वंशीवट, ज्ञानगुदड़ी, मीरा मन्दिर, रंगनाथ मन्दिर, कालियादह, केशीघाट, रास चौक आदि स्थानोंके दर्शन करते हुए हम जब बाँकेबिहारीके दर्शनोंके लिये जाने लगे तो एक सँकरे बाजारके एक कोनेमें एक चायका ठेला देखा। मेरे गाइडने मुझसे कहा—'महाराज! यहाँकी चाय बहुत अच्छी होती है। सारे व्रजक्षेत्रमें इतनी जायकेदार चाय कहीं भी नहीं मिलेगी।'

मैंने उसे समझाया कि मैं तो चाय नहीं पीता। परंतु यदि उसे चाय पीनी है, तो थोड़ी देर यहाँ बैठनेपर मुझे कोई एतराज नहीं है।

मैं यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया कि यह चायका ठेला एक साधुका है। साधु महाराज ही चाय बनाते हैं, ग्राहकोंको चाय देते हैं, चायके बर्तन वापस लेते हैं, और चायके पैसे भी वही लेते हैं। चायके ठेलेके सामने ही एक बड़ी दूकान है। उसमें कुछ कुर्सियाँ रखी हुई हैं। चाय पीनेके लिये आनेवाले लोग इस कक्षमें कुर्सीपर बैठकर चाय पीते हैं।

मैंने साधु बाबाके चेहरेको देखा। उनके केश, दाढ़ी और चेहरेकी आकृति एवं वर्णको देखा। उनकी आँखोंमें झाँककर देखा। उनके शरीरका गठन, उनके हाथ एवं उँगलियोंकी रचनाको देखा। लक्षण देखकर लगा कि यह कोई सिद्धपुरुष है, सच्चा साधु है। उनकी आँखें तो भक्तकी आँखें हैं। ऐसा पुरुष, ऐसा साधु चायका ठेला क्यों चलाता है? अवश्य इसमें कुछ रहस्य है, कोई गहरा भेद है।

भेद तो है, परंतु रहस्योंकी तुरंत थाह नहीं ली जा सकती। सभी सवाल कभी भी नहीं पूछे जा सकते। उसके लिये अनुकूल समयकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

मेरे गाइडने चाय समाप्त कर दी थी। होटलके मालिक साधु बाबाको चायके पैसे देकर। हम आगे बढ़े। रास्तेमें एक स्थानपर रासलीला देखने रुक गये। वृन्दावनमें कुछ स्थानोंपर नित्य रासलीला होती है। छोटे बच्चे श्रीकृष्णकी भिन्न-भिन्न लीलाओंको अत्यन्त सुन्दर ढंगसे प्रस्तुत करते हैं। यात्री इस लीलाके दर्शनोंके लिये आते हैं। लीलाका प्रारम्भ होनेमें कुछ देर थी। शाम ढलने लगी थी। मेरे गाइड रातके अँधेरेमें तो बिलकुल नहीं देख सकते थे, अत: अँधेरा होनेसे पहले उन्हें अपने स्थानपर पहुँच जाना जरूरी था। उन्होंने जानेके लिये अनुमति चाही, तो मैंने अनुमति दे दी। रासलीलाके प्रारम्भिक हिस्सेके दर्शन करके, बाँकेबिहारी महाराजके दर्शन किये, आरतीमें उपस्थित रहकर मेरी आजकी यात्रा समाप्त हो गयी, और अब मुझे चार सम्प्रदाय आश्रमके पड़ावपर पहुँचना था।

मेरा स्वाभाविक क्रम बाँकेबिहारी महाराजके दर्शन करके सीधे ही चार सम्प्रदाय आश्रममें पहुँचना था, परंतु अब इस क्रममें एक अन्य कार्यक्रमकी बढ़ोत्तरी हो गयी थी। चायका ठेला चलानेवाले साधु बाबाका रहस्य क्या है—यह जाननेकी बेचैनी थी।

बाँकेबिहारी महाराजके दर्शन करके आश्रम जानेके बदले मैं सीधा ही साधु बाबाके चायके होटलकी ओर चल दिया। वहाँ जाकर देखा तो चकित हो गया। साधु महाराज बहुत ध्यानसे हाथसे रगड़-रगड़कर होटलकी सफाई कर रहे थे। जिस प्रकार सुनार अपनी दूकानकी

अच्छी तरहसे रगड़कर सफाई करता है, उसी प्रकार साधु महाराज एक छोटी-सी झाड़ूसे दूकान-होटलकी रगड़कर सफाई कर रहे थे। मैं दरवाजेके पास ही रुक गया। उन्होंने मेरी उपस्थिति देखकर मुसकान बिखेर दी। सारी धूल एकत्रित करके उन्होंने एक छोटे स्वच्छ सुन्दर कपड़ेके टुकड़ेमें बाँधकर छोटी-सी पोटली तैयार कर दी। वह पोटली थैलीमें रख दी। होटल बन्द कर दिया। ताला नहीं लगाया, केवल जंजीर लगा दी। मैं उनका यह बर्ताव समझ नहीं सका। रहस्य सुलझनेके बदले अधिक गहरा हो गया। इस होटलकी धूलको एकत्रित करके पोटलीमें क्यों रख दी? सुनार तो इसलिये धूल एकत्रित करता है; क्योंकि धूलमें स्वर्णके कुछ कण हो सकते हैं। उस धूलको धुलवाकर सुनार उसमेंसे स्वर्ण प्राप्त करता है। स्वर्णकी धूलकी पोटलीका कारण तो समझ सकते हैं, परंतु हमारे यह साधु महाराज होटलकी धूल क्यों एकत्रित करते हैं? उसमें कौन-से स्वर्णके कण हो सकते हैं?

मैंने देखा कि अब होटल बन्द करके वे निकल रहे हैं। मैंने उन्हें प्रणाम करके 'जय राधे' कहा। उन्होंने भी प्रणामकी मुद्रामें 'जय राधे' कहा। मैंने उनसे पूछा—'महाराज! आप कहाँ विराजमान होते हैं?' उन्होंने अत्यन्त सहज सरलभावसे कहा—'केशीघाटके पास छोटी-सी कुटिया है। आप आइये, सत्संग होगा।'

हम दोनों साथ ही निकल पड़े। बीच रास्तेमें थोड़ी देरके लिये मैं चार सम्प्रदाय आश्रममें गया। फिर हम दोनों उनके केशीघाटपर स्थित निवास-स्थानपर जानेके लिये चल पड़े। यमुनाके तटपर एक छोटी कुटिया है। वहाँ बिजलीकी सुविधा नहीं है। लालटेनके सहारे काम चलता है। उन्होंने रसोई बनायी। हम दोनोंने भोजन किया। भोजनके पश्चात् नित्य-क्रमानुसार वे यमुना-स्नानके लिये निकले। हम दोनोंने यमुना-स्नान किया। स्नानके बाद उन्होंने होटलकी सफाई करते समय जो धूल एकत्रित करके पोटली बनायी थी, वह खोलकर उसमें स्थित धूल अपने सारे शरीरपर मल ली। वस्त्र धारण करके हम उनकी कुटियापर गये। कुटियाके बाहर आसन बिछाकर, यमुनाजीके सम्मुख हम बैठ गये।

उनके साथ जो सत्संग हुआ, उसके सहारे मैंने उनकी जीवनशैली एवं साधनाके स्वरूपको समझनेकी कोशिश की।

यह साधु एक सच्चे कृष्णभक्त साधु हैं। उनकी आकृति, मुख एवं आँखोंको देखकर उनके बारेमें मैंने जो सोचा था, वह सही सिद्ध हुआ। वृन्दावन आनेवाले यात्री वैष्णव होते हैं, कृष्णभक्त होते हैं। उनकी सेवा करना भक्तिका ही एक स्वरूप है। उनकी सेवा की जाय, उन्हें अच्छी तरहसे बनायी गयी चाय देना एक सेवा है। गायका दूध एवं श्रेष्ठ प्रकारकी चायकी पत्तियाँ वे खरीदते हैं। अत्यन्त लगनसे वे चाय बनाते हैं। आगन्तुक वैष्णव भक्तोंकी सेवा करनेके भावसे वे उन्हें चाय परोसते हैं। किसीसे पैसे नहीं माँगते। अधिकांश यात्री पैसे देते हैं, परंतु यदि कोई पैसे नहीं देता, तो साधु बाबा पैसे माँगते नहीं, बल्कि उनके इस व्यवहारसे अधिक प्रसन्न हो जाते हैं।

वैष्णवोंकी चरणरजसे शरीर, मन पवित्र होता है, ऐसी भावनासे साधु बाबा पूरे दिनके दौरान एकत्रित वैष्णवोंकी चरणरज एकत्रित कर लेते हैं, और वही रजकण शामको यमुना-स्नानके पश्चात् अपने शरीरपर मल लेते हैं। रातभर वे यह पावन रजकण अपने शरीरपर ही रहने देते हैं और प्रातः वे यमुना-स्नान करते हैं।

सुबह दो घंटे और शामको दो घंटे वे अपना यह वैष्णव सेवा होटल खोलते हैं। चाय बनाते समय एवं परोसते समय वे कृष्ण नामका जप जारी रखते हैं। इन चार घंटोंके सिवा अन्य समय साधु महाराज श्रीमद्भागवतका पाठ, श्रीकृष्णकी सेवा-पूजा एवं कृष्णनामका जप करते रहते हैं।

भावना फलित होती है। **भावग्राही जनार्दनः**। साधक जो क्रिया करता है, उस क्रियाके बहिरंग स्वरूपसे भी उस क्रियामें निहित उसकी भावना कैसी है, यह विशेष महत्त्वपूर्ण है। वैष्णवोंकी सेवाके लिये चायका होटल चलाना, उनके सत्संगको कृष्णभक्तोंका सत्संग मानना, उनकी चरणरजको वैष्णव चरणरज मानकर शरीरपर धारण करना—यह भावना उनकी साधनाका केन्द्रीय तत्त्व है। उनकी यह पद्धति देखकर कोई उन्हें दीवाना मान सकता है, परंतु अध्यात्मपथ तो दीवानोंके लिये ही है। वृन्दावन व्यवहारचतुर, बुद्धिवादी लोगोंके लिये नहीं है।

वृन्दावन तो दीवानोंकी ही दुनिया है। बुद्धिवादियोंके लिये तो कोई विद्यापीठ ही ठीक है।—**भानदेव**

(२)

हिंसक प्राणीके प्रति भी करुणा रखना ही मनुष्यता है

स्वामी श्रीरामहर्षणदासजी महाराज जिस समय मार्कण्डेय आश्रम (सोन महानदीके पावन संगम)-की सुरम्य वनस्थलीमें एकान्त भजन में निरत थे, उन्हीं दिनों प्रभुकी कुटिया (पी. डब्लू. डी. के गैंग हट)-के पीछे बनी कोठरी (छोटे कमरे)-में भण्डारकक्ष था, जिसमें आटा, घी, चावल, दाल इत्यादि दैनिक उपयोगकी सामग्री रहती थी। उसी कोठरीमें एक दिन एक काला विषधर सर्प घुस गया। चूँकि मार्कण्डेय आश्रम पूर्णत: वनक्षेत्र ही था, अत: वहाँ जीव-जन्तुओंका साम्राज्य स्वाभाविक ही था। सर्प घुस ही नहीं गया, बल्कि पूर्णरूपेण आसन जमाकर बैठ गया, निकलनेका तो नाम ही नहीं ले रहा था। यह भी पता नहीं था कि उस कमरेमें वह कबसे घुसा बैठा था!

प्रात:काल जब सेवक कुछ निकालनेके लिये भण्डारमें गये, तो नागराजको देखकर चीखकर बाहर निकल आये। अब सभी सेवक नागराजके निकलनेकी प्रतीक्षा करने लगे, अब निकलते हैं, अब निकलते हैं, परंतु दस-ग्यारह बज गये और नागराजने तो पूरी कोठरीमें अपना साम्राज्य ही जमा लिया था, और नहीं निकले। प्रभु तो भजनमें बैठ चुके थे, उन्हें तो अब दो बजेसे पहले निकलना ही नहीं है। समस्या आयी कि प्रभुके लिये फलाहार (भोजन) कैसे बने? क्योंकि सारी सामग्री तो उसी कक्षमें ही रखी थी। लाठी-डंडा पीटा गया, आवाज की गयी, फिर भी नागराज बाहर निकलनेका नाम ही नहीं ले रहे थे। अन्तत: कुछ साहसी सेवकोंने डंडा उठाया और कोठरीमें घुसकर उसे मार डाला।

श्रीस्वामीजी महाराज जब अपने नियमसे उठकर हाथ-मुँह धोकर विराजे, तो सेवकोंमेंसे ही किसीने यह वृत्तान्त श्रीचरणोंमें निवेदित कर दिया कि आज बहुत बड़ा साँप मार डाला गया। बहुत भयंकर सर्प था, मार डाला गया नहीं तो आज सभीके प्राण ले लेता।

सुनते ही प्रभु दयार्द्र हो गये और नेत्र अश्रुसिक्त हो गये। कुछ बोले नहीं, मौन तो पहलेसे ही थे। फलाहार पानेके लिये निवेदन करनेपर, अनिच्छा व्यक्त कर दी और विश्राम-कक्षमें चले गये। गम्भीर मुद्रा देखकर किसीका भी साहस नहीं हुआ कुछ कहनेका। अनाहार ही सायंकाल नियमके लिये बैठ गये। गम्भीर मुखमुद्रा देखकर उस समय भी किसीका साहस नहीं हुआ कुछ कहनेका। सायंकालीन सूर्यास्तके पश्चात् जब प्रभुका मौन टूटा, तब सभी सेवकोंको बुलाया और अपनी खीझ प्रगट करते हुए बोले—

'आप सब लोग मनुष्य कहलानेके अधिकारी नहीं हैं। जिसमें मनुष्यता न हो, वह किस बातका मनुष्य है—हमारे शिष्य कहलाते हो और जीवहत्या करनेमें आपको किंचित् भी संकोच नहीं हुआ? यह तो आश्रम है, जहाँ अहिंसाकी प्रतिष्ठा होती है, वहाँ सभी जीव वैर त्याग देते हैं। आप लोग मनुष्य कहलाते हैं और मूक प्राणियोंके साथ अकारण वैरभावकी प्रतिष्ठा करते हैं। कोई प्राणी भटककर कुछ देरके लिये यदि आपकी छायामें आ ही गया, तो उसे मार ही डाला जाय? यह कोई मानवता है? माना कि क्रूर स्वभाववाला जीव है, परंतु क्रूर-से-क्रूर स्वभाववाले प्राणी भी सर्वदा क्रूर नहीं होते। अभी नहीं गया था, तो कुछ देर बाद चला जाता। जब आहट और शोर होता, तो समय देखकर स्वयं ही निकल जाता। सभी प्राणी निरापद स्थानमें ही रहना चाहते हैं।'

श्रीस्वामीजी महाराजके दोनों नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। अन्तमें सभी सेवक रोते हुए बड़ी देरतक चरणोंमें पड़े रहे। कान पकड़कर उठक-बैठककर कहा कि प्रभो! अब कभी ऐसा नहीं होगा, इस अपराधको क्षमा कर दें। तब क्रोध शान्त हुआ, पुन: कुछ सर्पमुक्तिके लिये भगवन्नाम-संकीर्तन कराया। उस दिन रात्रिमें भी प्रभुने फलाहारका सेवन नहीं किया।

धन्य है, स्वामीजी महाराजकी करुणा, कृपा।

—**पं० रामायण प्रसाद गौतम**

मनन करने योग्य

जुआ अनर्थकी जड़ है

निषध देशमें वीरसेनके पुत्र नल नामके एक राजा हो चुके हैं। वे बड़े गुणवान्, परम सुन्दर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सबके प्रिय, वेदज्ञ एवं ब्राह्मणभक्त थे। वे वीर, योद्धा, उदार और प्रबल पराक्रमी भी थे। इतने सब सद्‌गुण होते हुए भी उन्हें जुआ खेलनेका दुर्गुण था। उनकी पत्नीका नाम था दमयन्ती। दमयन्ती लक्ष्मीके समान रूपवती थी।

एक दिन राजा नल सन्ध्याके समय लघुशंकासे निवृत्त होकर पैर धोये बिना ही आचमन करके सन्ध्या-वन्दन करने बैठ गये। यह अपवित्र अवस्था देखकर कलियुग उनके शरीरमें प्रवेश कर गया। साथ ही दूसरा रूप धारण करके वह पुष्करके पास गया और बोला—'तुम नलके साथ जुआ खेलो और मेरी सहायतासे जुएमें राजा नलको जीतकर निषध देशका राज्य प्राप्त कर लो।' पुष्कर उसकी बात स्वीकार करके नलके पास गया। जब पुष्करने राजा नलसे बार-बार जुआ खेलनेका आग्रह किया, तब राजा नल दमयन्तीके सामने अपने भाईकी बार-बारकी ललकारको सह न सके। उन्होंने उसी समय पासे खेलनेका निश्चय कर लिया। उस समय नलके शरीरमें कलियुग घुसा हुआ था; इसलिये राजा नल दावँमें सोना, चाँदी,

रथ, वाहन आदि जो कुछ लगाते, वह हार जाते। प्रजा और मन्त्रियोंने बड़ी व्याकुलताके साथ राजा नलसे मिलकर जुएको रोकना चाहा और आकर फाटकके सामने खड़े हो गये। रानी दमयन्ती स्वयं दु:खके मारे दुर्बल और अचेत हुई जा रही थी। उसने आँखोंमें आँसू भरकर गद्‌गद कण्ठसे महाराजके सामने निवेदन किया—'स्वामी! नगरकी राजभक्त प्रजा और मन्त्रिमण्डलके लोग आपसे मिलने आये हैं और ड्योढ़ीपर खड़े हैं। आप उनसे मिल लीजिये।' परंतु नल कलियुगका आवेश होनेके कारण कुछ भी नहीं बोले। मन्त्रिमण्डल और प्रजाके लोग शोकग्रस्त होकर लौट गये। पुष्कर और नलमें कई महीनोंतक जुआ होता रहा तथा राजा नल बराबर हारते गये। सारा धन हाथसे निकल गया। जब दमयन्तीको इस बातका पता चला, तब उसने बृहत्सेना नामकी धायके द्वारा राजा नलके सारथि वार्ष्णेयको बुलवाया और उससे कहा—'सारथि! तुम राजाके प्रेमपात्र हो। अब यह बात तुमसे छिपी नहीं है कि महाराज बड़े संकटमें पड़ गये हैं। इसलिये तुम घोड़ोंको रथमें जोड़ लो और मेरे दोनों बच्चोंको रथमें बैठाकर कुण्डिननगरमें ले जाओ। तुम रथ और घोड़ोंको भी वहीं छोड़ देना। तुम्हारी इच्छा हो तो वहीं रहना। नहीं तो कहीं दूसरी जगह चले जाना।'

वार्ष्णेय सारथिके चले जानेके बाद पुष्करने पासोंके खेलमें राजा नलका राज्य और धन ले लिया। उसने नलको सम्बोधन करके हँसते हुए कहा—'और जुआ खेलोगे?' परंतु तुम्हारे पास दावँपर लगानेके लिये तो कुछ है ही नहीं। यदि तुम दमयन्तीको दावँपर लगानेयोग्य समझो तो फिर खेल हो। नलका हृदय फटने लगा। वे पुष्करसे कुछ भी नहीं बोले। उन्होंने अपने शरीरसे सब वस्त्राभूषण उतार दिये और केवल एक वस्त्र पहने नगरसे बाहर निकले। दमयन्तीने भी केवल एक साड़ी पहनकर अपने पतिका अनुगमन किया। इस प्रकार जुआ खेलनेके कारण उनकी यह दुर्गति हुई। जुआ अनर्थकी जड़ होता है।

॥ श्रीहरिः ॥

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

'कल्याण'

-के ९४वें वर्ष (वि०सं० २०७६-७७, सन् २०२० ई०)-के दूसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके

निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

१- अंग्रेजीके कवियोंपर गीताका प्रभाव (डॉ० श्रीरामशंकरजी द्विवेदी) .... सं०१२-पृ०२०

२- अच्युत, अनन्त और गोविन्द-नामकी महिमा .... सं० ८-पृ० ३८

३- अमृत-कण .... सं०८-पृ०११

४- अयोध्या-फैसला—कुछ अनकही बातें [**सम-सामयिक**] (डॉ० श्रीसन्तोष कुमारजी तिवारी, एम.एस-सी., एल.एल.एम., पी-एच.डी.) .... सं०९-पृ०२५

५- 'अवसि चलिअ बन' (श्रीसंजीवकुमारजी भारद्वाज, बी०काम०, एल-एल०बी०) .... सं०१२-पृ०१८

६- असंग रहो और भगवान्‌को अपना मानो (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) .... सं०३-पृ०२८

७- आचरण-शुद्धिमें बोधकथाओंकी भूमिका (श्रीसुरेन्द्रजी माहेश्वरी) .... सं०३-पृ०३५

८- आचारः परमो धर्मः' [—सम्पादक] .... सं०४-पृ०५०

९- आठ पापोंका घड़ा (प्रेमप्रकाशी संत श्रीमोनूरामजी) ... सं०२-पृ०२२

१०- आत्मनिवेदन (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) .... सं०३-पृ०७

११- आत्मविकासके सोलह सूत्र (श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी) .... सं०११-पृ०३१

१२- आध्यात्मिक प्रश्नोत्तर (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) .... सं०६-पृ०११

१३- आनन्दभूमि वृन्दावन एवं कृष्णका वेणुगीत (पद्मश्री प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र) .... सं०४-पृ०१९

१४- आयुर्वेदके अनुसार स्वास्थ्यका शत्रु है क्रोध (प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़) .... सं०१०-पृ०२६

१५- आवरणचित्र-परिचय— धुन्धुकारीकी मुक्ति सं०२-पृ०६, परब्रह्म परमात्माकी बाल-क्रीड़ा सं०३-पृ०६, यज्ञीय संस्कृति सं०४-पृ०६, श्रीरामराज्याभिषेक सं०५-पृ०६, श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र और श्रीजगन्नाथजी सं०६-पृ०६, शिव-महिमा सं०७-पृ०६, श्रीकृष्णका मित्रप्रेम सं०८-पृ०६, श्रीरामजन्मभूमि अयोध्याका इतिहास सं०९-पृ०६, भगवान् श्रीरामकी बालछवि सं०१०-पृ०६, भगवती महालक्ष्मीजी सं०११-पृ०६, गीताज्ञानका पुनर्स्मरण .... सं०१२-पृ०६

१६- आसुरी खान-पान—रोगोंको निमन्त्रण .... सं०९-पृ०१९

१७- ईश्वरका बोधक शब्द 'प्रणव' (डॉ० श्रीइन्द्रमोहनजी झा 'सच्चन', पी-एच०डी० (आयुर्वेद), डिप्लोमा इन योग) .... सं०४-पृ०२५

१८- उत्तम पति प्राप्त करनेका साधनस्वरूप व्रत............. सं०३-पृ०१४

१९- एक ही परमात्मा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ...... सं०८-पृ०७

२०- **कल्याण—** सं०२-पृ०५, सं०३-पृ०५, सं०४-पृ०५, सं०५-पृ०५, सं०६-पृ०५, सं०७-पृ०५, सं०८-पृ०५, सं०९-पृ०५, सं०१०-पृ०५, सं०११-पृ०५, सं०१२-पृ०५

२१- कल्याणका आगामी ९५वें वर्ष (सन् २०२१ ई०)-का विशेषाङ्क—'श्रीगणेशपुराणाङ्क' .... सं०६-पृ०४९

२२- कलियुगमें साक्षात् कामधेनु [गो-चिन्तन] .... सं०११-पृ०४१

२३- **कृपानुभूति—** .... सं०२-पृ०४६, सं०३-पृ०४६, सं०४-पृ०४५, सं०५-पृ०४६, सं०६-पृ०४४, सं०७-पृ०४६, सं०८-पृ०४३, सं०९-पृ०४६, सं०१०-पृ०४६, सं०११-पृ०४६, सं०१२-पृ०४२

२४- गायके चरनेमें रुकावट डालनेके कारण नरक-दर्शन. .... सं०४-पृ०४१

२५- गृहस्थाश्रम धन्य है! .... सं०५-पृ०३३

२६- गोपी-हृदयमें प्रेमसमुद्र (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) .... सं०१०-पृ०१३

२७- गोसेवा (श्रीगोपीनाथजी पारीक 'गोपेश') .... सं०२-पृ०४०

२८- गौओंकी सेवा .... सं०२-पृ०४२

२९- गोमाताकी सेवासे पुनरुत्थान [गो-चिन्तन] .... सं०१२-पृ०३७

३०- गोमाताके प्रति कृतज्ञ भाव रखें [गो-चिन्तन] (श्रीअशोकजी कोठारी) .... सं०७, पृ०४१

३१- गोवंशकी दुर्दशा—कारण एवं निवारण [गो-चिन्तन] (श्रीराजीवजी गुप्ता) .... सं०५-पृ०४०

३२- गोसेवाके फलस्वरूप प्राण-रक्षा [गो-चिन्तन] .... सं०६-पृ०४०

३३- गोस्वामी तुलसीदासजीकी नाम-निष्ठा (विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय) ..... सं०७-पृ०१८

३४- गोस्वामी तुलसीदासजीका वर्षा-वर्णन (डॉ० श्रीरोहिताश्वकुमारजी अस्थाना) .... सं०८-पृ०२१

३५- चार मित्र [बोध-कथा] (डॉ० श्रीमती पुष्पारानीजी गर्ग) .... सं०३-पृ०२२

३६- छः महीनेमें ब्रह्मप्राप्तिके साधन .... सं०४-पृ०१६

३७- छान्दोग्योपनिषद् और श्रीकृष्ण (महात्मा श्रीनारायणस्वामीजी). .... सं०८-पृ०२०

३८- जज नीलमाधव बनर्जीकी अनूठी नैतिकता [प्रेरक प्रसंग] .... सं०६-पृ०१५

३९- जीव क्या है और माया क्या है ? (श्रीरणविजयसिंहजी) .... सं०१२-पृ०२७

४०- जीवनका लक्ष्य—प्रभुभक्ति एवं जनसेवा [प्रेरक-प्रसंग] (श्रीशिवकुमारजी गोयल) .... सं०५-पृ०३०

४१- जीवन्मुक्त महात्माके लक्षण (डॉ० श्री के०डी० शर्मा) .... सं०६-पृ०२४

४२- जीव-शिक्षा-सिद्धान्त [स्वामी श्रीहरिदासकृत अष्टादश पद] .... सं०२-पृ०२५, सं०३-पृ०३८
४३- **तीर्थ-दर्शन—**
[क] 'अब चित चेति चित्रकूटहि चलु' (डॉ० श्रीअनुजप्रतापसिंहजी, डी०लिट०) ..... सं०७-पृ०३०
[ख] केरलस्थित जटायुतीर्थ—जटायुमंगलम् (प्रो० श्रीलम्बोधरनजी पिल्लै बी०) .... सं०१०-पृ०२८
[ग] ग्वालियरका शनिधाम—शनिश्चरा .... सं०१२-पृ०३१
[घ] तमिलनाडुका कन्याकुमारी शक्तिपीठ (श्रीसुदर्शनजी अवस्थी) .... सं०११-पृ०३४
[ङ] महाशक्ति आदिपीठ विन्ध्यवासिनी (श्रीदीनानाथजी दुबे) .... सं०५-पृ०२३
[च] रामाश्वमेधकी पुण्यभूमि 'नैमिषारण्य' (डॉ० श्रीरमेशमंगलजी वाजपेयी) .... सं०८-पृ०२७
[छ] वाराणसी—एक तात्त्विक विवेचन (प्रो० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पंकज') .... सं०९-पृ०३२
[ज] सिद्ध शक्तिपीठ देवीपाटन (श्रीचरणजीतजी 'चन्द्रेश') .... सं०४-पृ०३३
४४- तीर्थसेवन कैसे करें ? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) .... सं०४-पृ०१२
४५- दान-रहस्यको निरूपित करनेवाली कतिपय बोधकथाएँ (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ...... सं०२-पृ०८
४६- दीन-दुखियोंके प्रति कर्तव्य (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) .... सं०११-पृ०१३
४७- दृढ़ इच्छाशक्ति [बोध-कथा] (श्रीरामकिशोरजी) ..... सं०३-पृ०२७
४८- दुर्गा-पाठ [शतसहस्रायुतलक्ष चण्डीप्रयोग] (पं० श्रीहनूमानजी शर्मा) .... सं०३-पृ०१५
४९- देशका नामकरण (पण्डित श्रीजानकीनाथजी शर्मा) . सं०९-पृ०९
५०- दोष कैसे दूर हों ? (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) .... सं०६-पृ०३४
५१- धन और भागवत जीवन (श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी) सं०१२-पृ०११
५२- धन और सुख (प्रो० श्रीरामचरण महेन्द्रजी, एम०ए०) .... सं०१०-पृ०९
५३- धर्म और सम्प्रदाय (ब्रह्मचारिणी सुश्री प्रज्ञाजी) ...... सं०११-पृ०१५
५४- धर्मरथ (श्रीभगवतदास राघवदासजी महाराज) .... सं०१०-पृ०३१
५५- नया दोस्त, पुराना दुश्मन [बोध-कथा] (वैद्य श्रीमोहनलालजी गुप्त).. .... सं०५-पृ०२०
५६- नाम-स्मरण (समर्थ सद्गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर) सं०२-पृ०१७, सं०३-पृ०९, सं०४-पृ०१५
५७- नाम-महिमा [बोध-कथा] (प्रो० श्रीभीमचन्द्रजी चटर्जी) .... सं०५-पृ०११
५८- नाम-स्मरण (श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर) .... सं०८-पृ०८
५९- निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची .... सं०१२-पृ०४७
६०- प्रेममें प्रसन्नता (पं० श्रीचन्द्रभालजी ओझा) .... सं०४-पृ०२८
६१- **पढ़ो, समझो और करो—** सं०२-पृ०४७, सं०३-पृ०४७, सं०४-पृ०४६, सं०५-पृ०४७, सं०६-पृ०४५, सं०७-पृ०४७, सं०८-पृ०४५, सं०९-पृ०४७, सं०१०-पृ०४७, सं०११-पृ०४७, सं०१२-पृ०४३
६२- पर्यावरण-संरक्षक वटसावित्री व्रत (श्रीसलिलजी पाण्डेय) .... सं०५-पृ०१८
६३- परिवारका स्वरूप (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ) .... सं०३-पृ०२५
६४- पातिव्रत्यकी महिमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) .... सं०११-पृ०७
६५- पाप और पुण्य (श्रीअर्जुनजी पंजाबी) .... सं०८-पृ०३१
६६- पुण्यकर्म भाग्यको बदल देता है .... सं०२-पृ०२३
६७- प्यासी गौको जल पीनेसे रोकनेके कारण पुत्रहीनता .... सं०३-पृ०४१
६८- प्रभुमें विश्वास कैसे बढ़े ? (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) .... सं०४-पृ०४०
६९- प्रलय नहीं, लयके देवता हैं भैरवजी (श्रीसलिलजी पाण्डेय).. .... सं०१२-पृ०२२
७०- प्रसन्नताका रहस्य (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) सं० ११, पृ० ४०
७१- प्रेम-तत्त्व (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज).. .... सं०५-पृ०१०
७२- भगवती लक्ष्मीके ऐहिक वास-स्थान (स्वामी श्रीरामराज्यम्जी महाराज) .... सं०११-पृ०२३
७३- भगवान्की प्राप्ति करानेवाले उत्तम गुण और आचरण (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) .... सं०१०-पृ०७
७४- भगवान् भावके अधीन हैं (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा) .... सं०२-पृ०२१
७५- भगवत्-सत्ताका बोध करानेवाली कुछ घटनाएँ (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) .... सं०२-पृ०१५
७६- भगवान्का मंगल विधान [सत्य घटना] (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) .... सं०९-पृ०११
७७- भक्तके लक्षण (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) .... सं०३-पृ०११
७८- भगवत्कृपा—स्वरूप-चिन्तन (आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय') .... सं०८-पृ०२५
७९- भगवत्प्राप्तिकी साधनामें आत्मनिवेदनकी भूमिका (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) .... सं०४-पृ०७
८०- भगवान्का स्वरूप (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) .... सं०८-पृ०१०
८१- भगवान् शिवकी शरणागतिसे परम कल्याणकी प्राप्ति .... सं०७-पृ०२९
८२- भवितव्यता [बोध-कथा] (श्रीकन्हैयासिंहजी 'बिशेन') .... सं०३-पृ०१८
८३- भारतकी आत्मा—संस्कृत (वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी) .... सं०२-पृ०३५
८४- भारतीय अध्यात्म-सम्बन्धी श्रीअरविन्दकी चिन्तन-दृष्टि (श्रीहरिश्चन्द्रजी श्रीवास्तव) .... सं०६-पृ०१७
८५- भोग और प्रसाद (आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय') ...... सं०१२-पृ०१७
८६- मन-इन्द्रियोंको वशमें करके परमात्माको प्राप्त करे (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ...... सं०९-पृ०७
८७- मनके जीते जीत (डॉ० श्रीसुनीलकुमारजी सारस्वत) .. सं०९-पृ०२९
८८- **मनन करने योग्य—**सं०२-पृ०५०, सं०३-पृ०५०, सं०४-पृ०४९, सं०५-पृ०५०, सं०६-पृ०४८, सं०७-पृ०५०, सं०८-पृ०४८, सं०९-पृ०५०, सं०१०-पृ०५०, सं०११-पृ०५०, सं०१२-पृ०४६
८९- मन्दिर—भक्तिके द्वार (डॉ० श्रीगोपाल दामोदरजी फेगडे) .... सं०५-पृ०२८
९०- ममता (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती, सिहोरवाले) .... सं०१०-पृ०१४
९१- मरणोपरान्तकी क्रिया (श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास) .. सं०९-पृ०१३

९२- महान् महात्माके महान् कर्म [ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजसे जुड़े कुछ संस्मरण] (श्रीलादूसिंहजी राजपुरोहित) .... सं०२-पृ०३७
९३- महापुरुषोंके प्रति उद्दण्डताका दुष्परिणाम [बोध-कथा] .... सं०१२-पृ०३०
९४- महामारी और हमारी स्वास्थ्य-रक्षक सेना (श्रीहनुमानप्रसादजी गोयल) .... सं०७-पृ०२६
९५- महामारीसे मुक्त होनेका सटीक उपाय (राधेश्याम खेमका) सं० ८-पृ०४९
९६- महाराज विश्वामित्र—राजर्षिसे ब्रह्मर्षि (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा) .... सं०६-पृ०२७
९७- मान और विवेक (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीदयानन्द गिरिजी महाराज) .... सं०७-पृ०८
९८- मानव-जीवनमें सुख और दुःख (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ..... सं०७-पृ०३८
९९- मानस-पूजा (सुश्री डॉ० सुनीताजी शास्त्री) .... सं०८-पृ०२३
१००- मॉरीशस और ब्रिटेनमें हिन्दू संस्कृति (श्रीबिन्धाप्रसादजी द्विवेदी). .... सं०६-पृ०२०
१०१- 'यह तो बड़ी ही अच्छी बात है' (श्रीसीतारामजी गुप्ता) .... सं०५-पृ०२७
१०२- यह सच्चा या वह सच्चा? (श्रीलालजी) .... सं०४-पृ०३१
१०३- यज्ञोपवीत (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) .... सं०७-पृ०७
१०४- यात्री (श्रीरामचाकरजी) .... सं०२-पृ०२४
१०५- योगवासिष्ठमें बोधके चार मार्ग (श्रीजयनारायणजी त्रिपाठी) सं०२-पृ०२९
१०६- राम और नाम .... सं०७-पृ०२०
१०७- राग-द्वेष (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ) .... सं०७-पृ०२४
१०८- 'लला फिर आइयो खेलन होरी' (श्रीअर्जुनलालजी बन्सल) .... सं०३-पृ०२३
१०९- लक्ष्मीका वास कहाँ है? .... सं०७-पृ०३९
११०- वर्तमान युगमें ज्योतिषका महत्त्व (पं० श्रीसंजय शिवशंकरजी दवे, ज्योतिषाचार्य) .... सं०३-पृ०२९
१११- वाणीका सदुपयोग करें! (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) .... सं०६-पृ०१६
११२- विघ्नहर्ता गणपति गणेश [एक सांस्कृतिक रेखांकन] (डॉ० श्रीअजितकुमारसिंहजी, आई०पी०एस०) ..... सं०११-पृ०२१
११३- विज्ञान एवं अध्यात्ममें समन्वय अति आवश्यक [प्रेरक प्रसंग] (डॉ० श्रीविश्वामित्रजी) .... सं०६-पृ०२३
११४- विज्ञानकी कसौटीपर गोदुग्ध और गोघृत [गो-चिन्तन] (श्रीबरजोरसिंहजी) .... सं०१०-पृ०३६
११५- विलक्षण क्षमा [प्रेरक-प्रसंग] .... सं०१२-पृ०३४
११६- विवेक, विश्वास और प्रेम (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ... सं०१२-पृ०३५
११७- विश्नोई सम्प्रदायके जाम्भाणी साहित्यमें प्राप्त प्रेरक बोधकथाएँ (श्रीविनोद जम्भदासजी कड़वासरा) .... सं०३-पृ०३२
११८- विश्वासी भक्त (श्रीयुत पं० श्रीनाथजी दुबे) .... सं०१२-पृ०२८
११९- वैवाहिक जीवनके प्रारम्भिक पल (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वर चैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ) ...... सं०५-पृ०३१
१२०- **व्रतोत्सव-पर्व—**
चैत्रमासके व्रत-पर्व सं०२-पृ०४३, वैशाखमासके व्रत-पर्व सं०३-सं०४३, ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व सं०५-पृ०४५, आषाढ़मासके व्रत-पर्व सं०६-पृ०४३, भाद्रपदमासके व्रत-पर्व सं०७-पृ० ४५, आश्विनमासके व्रत-पर्व सं०८-पृ०४२, आश्विनमासके व्रत-पर्व सं० ९-पृ० ४५, कार्तिकमासके व्रत-पर्व सं०१०-पृ०४०, मार्गशीर्षमासके व्रत-पर्व सं०११-पृ०४४, पौषमासके व्रत-पर्व स०११-पृ०४५, माघमासके व्रत-पर्व सं०१२-पृ०४०, फाल्गुनमासके व्रत-पर्व सं०१२-पृ०४१
१२१- शंख और घंटा-ध्वनिसे रोगोंका नाश (श्रीयमुनाप्रसादजी) .... सं०४-पृ०३९
१२२- शरणागतिका यथार्थ स्वरूप (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) .... सं०५-पृ०१२
१२३- शुद्धिका अर्थ [स्वामी श्रीजगदेवानन्दजी] .... सं०६-पृ०३९
१२४- श्राद्ध—क्या, क्यों, कैसे? (श्रीहितसुकृतलालजी गोस्वामी) .... सं०९-पृ०२०
१२५- श्राद्धसे जगत्की तृप्ति .... सं०९-पृ०२४
१२६- श्रावणमास और उसके व्रत-पर्वोत्सव .... सं०७-पृ०२१
१२७- श्रीगंगा-माहात्म्य .... सं०६-पृ०१३
१२८- श्रीगीताजयन्ती और गीताकी महिमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) .... सं०१२-पृ०७
१२९- श्रीनारदजीका अभिमान-भंग [बोधकथा] .... सं०४-पृ०२४
१३०- श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना .... सं०१०-पृ०४१
१३१- श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना .... सं०१०-पृ०४४
१३२- श्रीमद्भगवद्गीताका कर्मयोग (श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला) .... सं०१२-पृ०२४
१३३- श्रीराधा-कृष्ण-महारास-लीलाकी साक्षी 'शरत्पूर्णिमा' (श्रीअर्जुनलालजी बन्सल) .... सं०१०-पृ०२०
१३४- श्रीरामचरितमानसमें संग-प्रभाव (डॉ० श्रीफूलचन्द प्रसादजी गुप्त, सम्पादक 'योगवाणी') .... सं०१०-पृ०२३
१३५- श्रीराम-नामकी महिमा .... सं०११-पृ०३९
१३६- श्रीरामचरितमानसमें रावण-प्रबोधके प्रसंग (पद्मश्री प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र, पूर्व कुलपति—सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) .... सं०११-पृ०२६
१३७- श्रीरामचरितमानसमें श्रीभरतजीकी अनन्त महिमा (साकेतवासी श्रद्धेय श्रीकृपाशंकरजी 'रामायणी').. सं०११-पृ०९
१३८- श्रेष्ठतमका आश्रय ही श्रेयस्कर .... सं०२-पृ०३८
१३९- संकल्प-शुद्धिकी अनिवार्यता (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ..... सं०८-पृ०३९
१४०- संकीर्तनकी महिमा .... सं०६-पृ०३३
१४१- संकीर्तनसे रोगमुक्ति (वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी) .... सं०६-पृ०३२
१४२- संतमतमें ईश्वरकी सत्ता और महत्ता (स्वामी श्रीअच्युतानन्दजी महाराज) .... सं०२-पृ०११
१४३- संत-वचनामृत—सं०२-पृ०३९, सं०३-पृ०३७, सं०४-पृ०२७, सं० ७, पृष्ठ ४०, सं०१२-पृ०२६ (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके.... उपदेशपरक पत्रोंसे)
१४४- संत-स्मरण (परमपूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार) ...... सं०२-पृ०१८
१४५- संत स्वामी कार्ष्णि हरिनामदासजीकी अद्भुत गोभक्ति [गो-चिन्तन] (कार्ष्णि डॉ० श्रीराधेश्यामजी अग्रवाल) सं०८-पृ०३९
१४६- संतोंके लक्षण और सन्त-समागमकी महिमा (श्रीसुभाषचन्द्रजी बग्गा) .... सं०२-पृ०३२
१४७- संसारकी सुखमयता (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) .... सं०७-पृ०१२
१४८- सकारात्मकता और नकारात्मकता (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वर-चैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ) .. सं०२-पृ०२७
१४९- 'सतसंगति महिमा नहिं गोई' (स्वामी श्रीअच्युतानन्दजी महाराज) .... सं०६-पृ०१४
१५०- सनत्कुमारकथित श्रीकालभैरवाष्टकम्.............. सं०१२-पृ०२३
१५१- सन्तोषामृत पिया करें (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र) सं०८-पृ०१३
१५२- सबमें भगवान् (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) .... सं०१२-पृ०१०
१५३- सम्पत्तिके सब साथी, विपत्तिका कोई नहीं .... सं०८-पृ०१५
१५४- समस्या और समाधान (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)............ सं०८-पृ०३५
१५५- सही प्रवृत्तिसे सहज निवृत्ति (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) सं०९-पृ०३९
१५६- **साधनोपयोगी पत्र**—सं०२-पृ०४४, सं०३-पृ०४४, सं०४-पृ०४३, सं०५-पृ०४३, सं०६-पृ०४१, सं०७-पृ०४३, सं०८-पृ०४०, सं०९-पृ०४३, सं०१०-पृ०३८, सं०११-पृ०४२, सं०१२-पृ०३८
१५७- साक्षीभाव (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतीय धर्मसंघ) .... सं०९-पृ०४०
१५८- सीमापर चीनी-आक्रमणके परिप्रेक्ष्यमें— .... सं०८-पृ०१२
१५९- सुखका उपाय (श्रद्धेय सन्त श्रीमोटाजी, नाडियाद-गुजरातवाले) . सं०४-पृ०१०
१६०- सुखभोगकी इच्छाओंके नाशका उपाय (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)सं०१०-पृ०३५
१६१- स्वच्छ वस्त्रोंका आध्यात्मिक प्रभाव (आचार्य डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०, पी०-एच० डी०)सं०१२-पृ०९
१६२- स्वाभाविक कर्मसे भगवत्प्राप्ति (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) .. सं०५-पृ०७
१६३- **साधकोंके प्रति**—
स्वरूपमें ही स्थित रहें सं०२-पृ०१९, अहंकार कैसे मिटे? सं०३-पृ०१९, शरीर और संसारको अस्थिर मानो सं०४-पृ०१७, भगवत्स्मरणकी महिमा सं०५-पृ०१६, गतिशील संसार सं०६-पृ०२१, 'बार-बार नहिं पाइये, मनुष-जनमकी मौज' सं०७-पृ०१६, संसारके वियोगमें सुख-शान्ति सं०८-पृ०१६, शरीरसे अलगावका अनुभव सं०९-पृ०१७, अनुभूतिमें बाधा—सुखलोलुपता सं०१०-पृ०१८, सर्वोपरि साधन—सत्संग सं०११-पृ०१७, मुक्ति स्वत: हो रही है (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) सं०१२-पृ०१४
१६४- **संत-चरित**—
(क) अद्भुत सन्त शिवकोटि (पं० श्रीवीरभद्रजी शर्मा तैलंग) .... सं०८-पृ०३३
(ख) आत्मज्ञानी महात्मा महर्षि रमण (श्रीरामलालजी श्रीवास्तव) .... सं०५-पृ०३४
(ग) आबाल ब्रह्मचारी बालागुरु षडानन्दजी महाराज (पं० श्रीशिवप्रसादजी शर्मा) .... सं०४-पृ०३६
(घ) उदासीनाचार्य श्रीश्रीचन्द्रजी महाराज (स्वामी श्रीसर्वदानन्दजी महाराज, दर्शनरत्न)सं०३-पृ०४२
(ङ) गुजरातके सन्त श्रीडायाराम बाबा (श्रीरतिभाईजी पुरोहित) .... सं०१०-पृ०३३
(च) भक्तकवि श्रीकृष्णदयार्णवजी .... सं०१२-पृ०३३
(छ) महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र (श्रीरामलालजी श्रीवास्तव) .... सं०७-पृ०३५
(ज) श्रीरामभक्त पण्डितराज उमापतिजी त्रिपाठी 'वसिष्ठ' (श्रीअम्बिकेश्वरपतिजी त्रिपाठी) .... सं०११-पृ०३६
(झ) संत श्रीमुण्डिया स्वामी (श्रीरतिभाईजी पुरोहित) .... सं०६-पृ०३७
(ञ) सिद्ध हनुमद्भक्त पं० श्रीरामगुलाम द्विवेदी (पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय) सं०९-पृ०३६
१६५- हनुमान्जीद्वारा रावणकी चिकित्सा करनेका यत्न (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय) .... सं०७-पृ०१३
१६६- हृदयकी सरलतासे प्रभुका साक्षात्कार (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) .... सं०५-पृ०१३

पद्य-संकलन

१- जब-जब उन्हें पुकारा, दौड़े आये हैं भगवान् (प्रो० श्रीकृष्णबिहारीजी पाण्डेय) .... सं०८-पृ०३४
२- 'जोड़ीं कितनी चीजें!' (श्रीशरदजी अग्रवाल) .... सं०३-पृ०१०
३- झाँकी देखिय अवधपुरी की (अवधबासी श्रीसीतारामजी 'भूप') .... सं०९-पृ०२८
४- पांचजन्य लो हाथमें (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणजी शास्त्री 'राम) संख्या १२, पृ०-३६
५- भज मन रामचरन सुखदाई .... सं०९-पृ०३१
६- मनमें हैं, मनमोहन (श्रीमती करुणाजी मिश्रा) .... सं०८-पृ०१९
७- वन्दन राधा-श्याम (श्रीदेवीचरणजी पाण्डेय 'चरण') .... सं०२-पृ०१०
८- विनय-प्रार्थना (डॉ० श्रीसतीशजी चतुर्वेदी 'शाकुन्तल') .... सं०४-पृ०१४
९- सरस्वती-प्रार्थना (श्रीरामलखनसिंहजी 'मयंक') .... सं०२-पृ०२०

संकलित

१- अतुलितबलधाम श्रीहनुमान्जी .... सं०९-पृ०३
२- 'उन श्रीराधापद-कमलोंमें नमस्कार है बारंबार' .... सं०८-पृ०३
३- गजानन-स्तवन .... सं०११-पृ०३
४- 'जानकी-जीवनकी बलि जैहौं' ....सं०५-पृ०३
५- पार्वतीजीकी शिवाराधना................................ सं०७-पृ०३
६- प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलमय .... सं० ९, पृ० १२
७- भगवती बगलामुखीका ध्यान .... सं०१०-पृ०३
८- भगवती सरस्वतीका ध्यान .... सं०४-पृ०३
९- भगवान् श्रीरामद्वारा रामेश्वर-पूजन .... सं०६-पृ०३
१०- 'भगवान् श्रीसूर्यके स्वरूपका ध्यान' .... सं०१२-पृ०३
११- मदन-दहन .... सं०२-पृ०३
१२- श्रीजगन्नाथाष्टकम्.. सं०६-पृ०१०
१३- श्रीमातंगी-ध्यान .... सं०३-पृ०३
१४- 'सेइये सनेहसों बिचित्र चित्रकूट सो'...................... सं०७-पृ०३४

श्रीमद्भगवद्गीताकी दो प्रमुख टीकाएँ

गीता-तत्त्व-विवेचनी—भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्यवाणीसे नि:सृत सर्वशास्त्रमयी गीताकी विश्वमान्य महत्ताको दृष्टिमें रखकर इस अमर संदेशको जन-जनतक पहुँचानेके उद्देश्यसे गीताप्रेसके आदि संस्थापक परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा प्रणीत गीताकी एक दिव्य टीका। इसमें २५१५ प्रश्न और उनके उत्तरके रूपमें प्रश्नोत्तर शैलीमें गीताके श्लोकोंकी विस्तृत व्याख्याके साथ अनेक गूढ़ रहस्योंका सरल, सुबोध भाषामें सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। इसके स्वाध्यायसे सामान्य-से-सामान्य व्यक्ति भी गीताके रहस्योंको आसानीसे हृदयंगम कर अपने जीवनको धन्य कर सकता है।

गीता-तत्त्व-विवेचनीके विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
3	**गीता-तत्त्व-विवेचनी**—हिन्दी-टीका, सजिल्द, सचित्र, साधारण संस्करण, ग्रन्थाकार।	140	1112	**गीता-तत्त्व-विवेचनी**—कन्नड़-अनुवाद, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	200
2	**गीता-तत्त्व-विवेचनी**—हिन्दी-टीका, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	170	1172	**गीता-तत्त्व-विवेचनी**—तेलुगु-अनुवाद, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	200
1	**गीता-तत्त्व-विवेचनी**—हिन्दी-टीका, सजिल्द, सचित्र, बृहदाकार।	300	1313	**गीता-तत्त्व-विवेचनी**—गुजराती-अनुवाद, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	200
1118	**गीता-तत्त्व-विवेचनी**—बँगला-अनुवाद, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	140	1304	**गीता-तत्त्व-विवेचनी**—मराठी-अनुवाद, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	160
800	**गीता-तत्त्व-विवेचनी**—तमिल-अनुवाद, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	200	457	**गीता-तत्त्व-विवेचनी**—अँग्रेजी-अनुवाद, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	200
1100	**गीता-तत्त्व-विवेचनी**—ओड़िआ-अनुवाद, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	180			

गीता-साधक-संजीवनी—ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजने गीतोक्त जीवनकी प्रयोगशालासे दीर्घकालीन अनुसन्धानद्वारा अनन्त रत्नोंका प्रकाश इस टीकामें उतार कर लोककल्याणार्थ प्रस्तुत किया है, जिससे आत्मकल्याणकामी साधक साधनाके चरमोत्कर्षको आसानीसे प्राप्त कर आत्मलाभ कर सकें। इस टीकामें स्वामीजीकी व्याख्या विद्वत्ता-प्रदर्शनकी न होकर सहज करुणासे साधकोंके लिये कल्याणकारी है। विविध आकार-प्रकार, भाषा, आकर्षक साज-सज्जामें उपलब्ध यह टीका सद्गुरुकी तरह सच्ची मार्गदर्शिका है।

गीता-साधक-संजीवनीके विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
6	**गीता-साधक-संजीवनी (परिशिष्टसहित)**—हिन्दी-टीका, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	300	1121	**गीता-साधक-संजीवनी**—ओड़िआ-अनुवाद, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	320
5	**गीता-साधक-संजीवनी (परिशिष्टसहित)**—हिन्दी-टीका, सजिल्द, सचित्र, बृहदाकार।	500	1369 1370	**गीता-साधक-संजीवनी**—कन्नड़-अनुवाद (दो खण्डोंमें), सजिल्द, सचित्र, ग्रंथाकार।	360
7	**गीता-साधक-संजीवनी**—मराठी-अनुवाद, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	300	1426 1427	**गीता-साधक-संजीवनी**—तमिल-अनुवाद, (दो खण्डोंमें) सजिल्द, सचित्र, ग्रंथाकार।	360
467	**गीता-साधक-संजीवनी**—गुजराती-अनुवाद, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	300	1080 1081	**गीता-साधक-संजीवनी (परिशिष्टसहित)**—अंग्रेजी-अनुवाद (दो खण्डोंमें), सजिल्द, सचित्र, पुस्तकाकार।	280
763	**गीता-साधक-संजीवनी**—बँगला-अनुवाद, सजिल्द, सचित्र, ग्रन्थाकार।	320			

प्र० ति० 20-11-2020
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57　　　पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2020–2022

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT	LICENCE No. WPP/GR–03/2020–2022

जनवरी सन् २०२१ ('कल्याण' वर्ष ९५)-का विशेषाङ्क—'श्रीगणेशपुराणाङ्क'

[श्लोकाङ्कसहित सम्पूर्ण हिन्दी भाषानुवाद]

'श्रीगणेशपुराण' गणपति-उपासनाका प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसके उपासना खण्डमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, पार्वती, स्कन्द, चन्द्रमा, मंगलग्रह, कश्यप, परशुराम, शेषनाग, कामदेव, महर्षि व्यास, भ्रूशुण्डी, मुद्गल, राजा कर्दम, नल, चन्द्रांगद, शूरसेन, वरेण्य, दक्ष, बल्लाल आदि देवताओं, ऋषि-मुनियों, राजाओं और गणेश-भक्तोंद्वारा की गयी उनकी उपासनाकी कथाएँ तथा क्रीडाखण्डमें भगवान् गणेशकी बाल-लीलाओंके साथ उनके गजानन आदि अवतारों तथा अनेक असुरोंके उद्धारकी कथाएँ वर्णित हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण पुराण रोचक एवं भक्तिपरक लीलाकथाओंसे परिपूर्ण है। यह पुराण शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर और गाणपत्य—सभीके लिये पठनीय है।

इस गणेशपुराणका श्रवण करनेवाला सभी आपत्तियोंसे मुक्त होकर अनेक भोगोंका उपभोग करके, पुत्र-पौत्रादिसे सम्पन्न होकर गणेशजीकी कृपासे उत्तम मुक्ति प्राप्त करता है। सैकड़ों करोड़ कल्प बीत जानेपर भी उसका [इस संसारमें] पुनरागमन नहीं होता। [गणेशपु० १।९२।५७—५८$^{१}/_{२}$]

इस विशेषाङ्कमें पिछले वर्षोंकी अपेक्षा **लगभग 150 पृष्ठ अधिक होंगे।** विशेष बात यह है कि पृष्ठ-संख्यामें वृद्धि होते हुए भी **कल्याणके मूल्यमें वृद्धि नहीं की गयी।**

वार्षिक-शुल्क पूर्ववत्—₹ 250　　　**पंचवर्षीय-शुल्क पूर्ववत्—₹ 1250**

वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹ 250 के अतिरिक्त ₹ 200 देनेपर मासिक अङ्कोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है। इस सुविधाका लाभ उठाना चाहिये।

इंटरनेटसे सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु gitapress.org पर **Kalyan** option को click करें।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५

नित्य पठनीय सचित्र चालीसा

श्रीदुर्गाचालीसा (कोड 2120) सचित्र, रंगीन, पुस्तकाकार, बेड़िआ, मोटा टाइप, मूल्य ₹ 15,

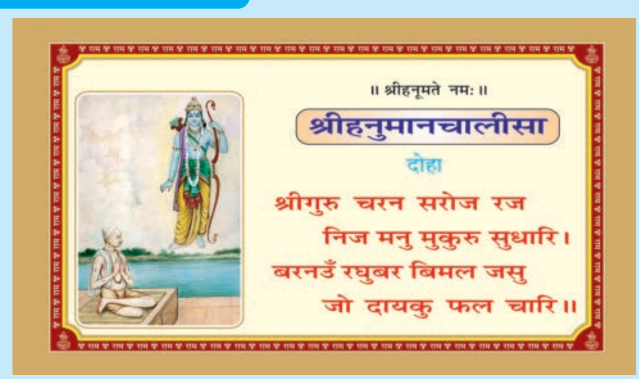

श्रीहनुमानचालीसा (कोड 2121) सचित्र, रंगीन, पुस्तकाकार, बेड़िआ, मोटा टाइप, मूल्य ₹ 15,

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
book.gitapress.org / gitapressbookshop.in

कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ सकते हैं।